ॐ

भक्ति

अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते ।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम् ॥

सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज ।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः ॥

मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु ।
मामेवैष्यसि युक्त्वैवमात्मानं मत्परायणः ॥

सम्पादक:-स्वामी कृष्णानन्द सरस्वती

चैत्र सम्वत् १९८४

वार्षिक चन्दा २।

एक प्रति ।)

भक्ति के नियम।

१. भगवान् की भक्ति का प्रचार करना गो रक्षण और इस के लिए गोचर भूमि छुड़वाना, जलाशय बनवाना, मनुष्य मात्र के लिए शिक्षा का प्रचार करना। वैदिक अनुभूत औषधियों का प्रचार करना, ग्रामों में परस्पर के झगड़े और वैमनस्य मिटा कर शान्ति व प्रेम बढ़ाना। सब संस्थाओं में भगवद्भक्ति और धर्म का भाव जाग्रत करना। राजा और प्रजा सब ही का हित चिन्तन करना।

२. यह पत्र प्रतिमास की पूर्णिमा को प्रकाशित हुआ करेगा।

३. वार्षिक चन्दा सर्वसाधारण से २) होगा

४. जो महानुभाव २५) रुपया देंगे वह सभा के संरक्षक और ५) देनेवाले सहायक होंगे।

५. अश्लील और अपरिचित विज्ञापन नहीं लिए जावेंगे।

६. लेखों को प्रकाशित करना और और घटाना व बढ़ाना सर्वथा सम्पादक के अधिकार में होगा।

७. लेख सम्बन्धी पत्र व्यवहार सम्पादक के नामसे और विज्ञापन व पुस्तक सम्बन्धी पत्र व्यवहार मैनेजर भक्ति के नामसे होना चाहिए।

८. जिन ग्राहकों के पास जिस मास की "भक्ति" न पहुंचे, उनको स्थानीय पोस्ट आफिस में पूछ कर उस मास की अमावस्या से पूर्व कार्यालय में सूचना भेजनी चाहिये। स्थानीय पोस्ट आफिस में बिना पड़ताल किये अथवा अमावस्या के बाद सूचना आने पर "भक्ति नहीं भेजी जायगी।

९. पत्रोत्तर का लिये जरावी, कार्ड भेजना चाहिये।

विषय सूची।

विषय	पृष्ठ
१. मंगलाचरण	२०१
सत्य [ले० श्रीमती सुरभदेवी भगवद्भक्ति आश्रम रेवाड़ी।	२०३
३. सद्गुरु शरण [ले० श्री० बादामो देवी भगवद्भक्ति आश्रम]।	२०६
४. भक्तों के चरित्र [सम्पादक]	२०९
५. यक्ष युधिष्ठिर सम्वाद [ले० भूमानन्द ब्रह्मचारी]	२१२
६. कैवल्य उपनिषद्	२१७
७. श्री कृष्ण चरित्र	२१९
८. मानव धर्मसार	२२६
९. भजन	२३०

ॐ

"कलौतु केवला भक्तिः।"

वार्षिक चन्दा ३) एक प्रति का ।)

जनता में भगवद्भक्ति भाव को जाग्रत करने वाली मासिक पत्रिका।

वर्ष २ } भगवद्भक्ति आश्रम रेवाड़ी, चैत्र पूर्णिमा सं० १९८५। { अङ्क ७

मङ्गलाचरण।

ओं पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्णमुदच्यते।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥ १ ॥

ब्रह्म पूर्ण है यह पूर्ण है पूर्ण से पूर्ण को कहा जाता है। पूर्ण के पूर्ण को लेकर पूर्ण ही शेष रहता है ॥ १ ॥

येन व्याप्तमिदं सर्वं जगत्स्थावर जङ्गमम्।
तं वन्दे परमात्मानं कृष्णाख्यं भक्तवत्सलम् ॥ २ ॥

जिस करके यह स्थावर जंगम सकल जगत व्याप्त है उस कृष्ण स्वरूप भक्तवत्सल परमात्मा को

नमस्कार करता हूं ॥ २ ॥

आप्यायन्तु ममाङ्गानि वाक् प्राणश्चक्षुः श्रोत्रमथो बलमिन्द्रियाणि च।
सर्वाणि सर्वं ब्रह्मोपनिषदं माऽहं ब्रह्म निराकुर्यां मा मा ब्रह्म निराकरो-
दनिराकरणमस्त्वनिराकरणमस्तु तदात्मनि निरते य उपनिषत्सु
धर्मास्ते मयि सन्तु ते मयि सन्तु ॥ ३ ॥

मेरे करचरणादि अंग ब्रह्म ध्यान अनुकूल तया से बुद्धिको प्राप्त होवें। ब्रह्म है या नहीं ऐसा निरादर मैं नहीं करूं। ऐसे ही वह मेरा निराकरण नहीं करे। हम परस्पर प्रीति से वर्तें। ब्रह्मात्मा में निरन्तर प्रेम करें। मेरे में शमादिक होवें। उपनिषदों में जो धर्म प्रकाशित हुये हैं वह सब मेरे में पटें ॥ ३ ॥

वागादीन्द्रिय ग्रामं मनः प्राणं धियं वपुः।
प्रेरयति हृदिस्थो यस्तंवन्देकृष्णविग्रहम् ॥ ४ ॥

जो हृदय में बैठा हुवा वाणी आदि दशेन्द्रियों को, मन को, प्राण को, बुद्धि को और शरीर को प्रेरणा करता है उस श्री कृष्ण को प्रणाम करता हूं॥४

विश्वरूपं हरिणं जातवेदसं परायणं ज्योतिरेकं तपन्तम्।
सहस्ररश्मिः शतधा वर्तमानः प्राणः प्रजानामुदयत्येष सूर्यः ॥ ५ ॥

विश्वरूप, प्रकाश स्वरूप, त्रिकालदर्शी, अन्तिम लक्ष, एक ज्योति रूप, उष्णता प्रदाता, सहस्र रश्मि युक्त, सौ रूपों वाला, और सब प्राणियों का जीवन रूप सूर्य उदय होता है ॥ ५ ॥

प्राणस्येदं वशे सर्वं त्रिदिवे यत्प्रतिष्ठितम्।
मातेव पुत्रानृक्षस्व श्रीश्च प्रज्ञां च विधेहि नः ॥ ६ ॥

यह समस्त जो कि तीनों लोकों में विद्यमान है वह प्राण के अधिपत्य में है। माता जैसे पुत्र की रक्षा करती है ऐसे ही हे प्राण! तुम हमारी रक्षा करो। हमको धन तथा बुद्धि प्रदान करो ॥ ६ ॥

वेदान्तप्रतिपाद्यं परात्परं ब्रह्म सनातनम्।
सत्यं ज्ञानमनन्तं तन्नमामि कृष्ण विग्रहम् ॥ ७ ॥

वेदान्त शास्त्र करके प्रतिपाद्य जो सनातन ब्रह्म है, जो सत्य स्वरूप, ज्ञानस्वरूप और अनन्त है उस कृष्ण को नमस्कार करता हूं ॥ ७ ॥

काली कराली च मनोजवा च सुलोहिता या च सुधूम्रवर्णा ।
विस्फुलिङ्गिनी विश्वरुची च देवी लेलायमाना इति सप्त जिह्वा ।८।

काले वर्ण वाली, भयंकर रूप वाली, मन जैसे शीघ्र वेग वाली, रक्तवर्ण वाली, जो धूम्र के समान वर्ण वाली और कृष्ण आदि सर्व वर्णों से युक्त यह दिव्य रूप प्रकाशमान सात जिह्वा हैं ॥ ८ ॥

दिव्यो ह्यमूर्त्तः पुरुषः स बाह्याभ्यन्तरो ह्यजः ।
अप्राणो ह्यमना शुभ्रो ह्यक्षरात्परतः परः ॥ ९ ॥

ब्रह्म निश्चय से दीप्ति वाला है, अमूर्त है, सर्व व्यापक है, वह बाहर और प्रत्येक पदार्थ के मध्य में है, इस लिये निश्चय करके उत्पत्ति से रहित है, प्राणों से रहित है, मन से रहित है, अतः प्रकाश स्वरूप है अक्षर प्रकृति से भी परे है ॥ ९॥

अग्निर्मूर्द्धा चक्षुषी चन्द्रसूर्यौ दिशः श्रोत्रे वाग्विवृताश्च वेदाः ।
वायुः प्राणो हृदयं विश्वमस्य पद्भ्यांपृथिवी ह्येष सर्वभूतान्तरात्मा ॥

इस ब्रह्म का अग्नि मुख है, चन्द्रमा और सूर्य चक्षु हैं, दिशायें श्रोत्र हैं ऋगादिवेद उसकी वाणी हैं, सर्व ब्रह्माण्ड गत वायु प्राण हैं, संसार हृदय स्थानीय है, पृथिवी पादस्थानीय हैं। निश्चय करके यह सब भूतों का अन्तरात्मा है ॥ १० ॥

यत्राध्यस्तमिदं सर्वं रज्वामुरग वज्जगत् ।
तं वन्दे परमात्मानं कृष्णनामभृतं परम् ॥ ११ ॥

जिसमें रज्जु में सर्पवत् सकल जगत् अध्यस्त है उस कृष्ण स्वरूप परम परमात्मा को नमस्कार करता हूं ॥ ११ ॥

सत्य ।

[ले० श्री० सूरजदेवी भगवद्भक्ति आश्रम]

गतांक से आगे ।

अश्व मेध सहस्रञ्च सत्यंच तुलयाधृतम् ।
अश्वमेध सहस्राद्धि सत्य मेवविशिष्यते ॥

एक समय देवताओं ने सत्य की महिमा जानने के लिये सहस्र अश्वमेध और सत्य को तोला तो सहस्र अश्वमेध से सत्य का पलड़ा भारी रहा । जब अश्वमेध यज्ञ भी सत्य की समता को न पहुंच सके तब क्यों सत्य की अवहेलना कर अपने धर्म के अंग का पालन करने में मनुष्य चूके। सत्य शुद्ध, प्रिय

वाक्य, हित कर वाक्य है इससे आत्मा का उत्कर्ष और पाप का क्षय होता है। सत्य से सदा अपना तथा दूसरो का सर्वदा हित ही होता है। यथा-

यथार्थ कथनं यच्च सर्व लोक सुख प्रदम् ।
तत्सत्यमिति विज्ञेय मसत्यं तद्विपर्ययम् ॥
सत्यस्य वचनं श्रेयः सत्यादपि हितं वदेत् ।
यद्भूत हित मत्यन्त तत्सत्यमिति कथ्यते ॥

सब लोगों को सुख देने वाला जो यथार्थ कथन है वह सत्य है इसके विपरीत असत्य है। सत्य वचन कल्याण करने वाला है।

सत्य भाषण से मनुष्य इस लोक में प्रतिष्ठा को प्राप्त कर अन्त में परम पद को प्राप्त होता है। एक समय एक राज्य की नगरी में घोर अकाल पड़ा वर्षा किसी भांति भी नहीं हुई। राजाने अनेक यज्ञ जप, हवन, दानादि क्रियायें की परन्तु वर्षा नहीं हुई। प्रजा वर्षाके बिना बेहाल होगई। उस राजा की नगरी के वृक्ष सूख गये लतायें मुरझा गई बिना मौसम ही सूर्य के आताप से पत्ते पीले होगये। छोटे २ पौधे भस्म होगये। जंगल की घास सूख कर भस्मी भूत होगई। वन की तो यह दशा हुई। पशुभी अनावृष्टि के कारण काल के ग्रास होने लगे। जलाभाव से भूखे और प्यासे होकर एक दूसरे को भक्षण करने लगे। जब वन और पशुओं की यह दशा थी तो प्रजा का क्या हाल होगा। पाठक गण मनुष्य का तो जल विशेष जीवन है यों तो सृष्टि ही जल से रची हुई है। परन्तु मनुष्य जल बिना शीघ्र व्याकुल होता है। सब प्रजा वर्षा बिना दुःखी होगई छोटे २ कोमल बच्चे असमय में ही यमराजके सदन पर पहुंचनेलगे। माता, पिता अपने प्राणों के लाले देख कर पुत्र शोक को कुछ नहीं गिनते। राजाने जब प्रजाकी यह दशा देखी तो बड़ा घबराया उसने ऋषि मुनि, ज्योतिषी सबकोइकट्ठा कर कहा कि क्या किया जाय जिस से राज्यमें वर्षा हो। वर्षाके बिना मेरी प्रजा बहुत दुःखी है। और प्रजा के दुःखी होने पर मैं भी बहुत दुःखी हूं। जप यज्ञ हवन दान बहुत कर लिये हैं। अब कोई और उपाय सोचना चाहिये। तब एक ऋषि बोला हे राजन् ! यदि कोई सत्य वादी पुरुष अपने मुंह से यह कहदे कि "वर्षा होजाय" तो अवश्य वर्षा होजाय आप अपने राज्य में सत्य वादी पुरुष की ढूंढ करवाइये। तब राजा ने सारे नगर में सत्य वादी ढुंढवाया तो किसी ने कहा कि हे राजन् ! इस नगरी में एक वैश्य है जो सत्य बोलता है और कोई नहीं है। राजा यह सुन कर उसी वैश्य की दुकान पर गया और प्रार्थना की कि आप वर्षा होने के लिये कहें। तब उस सत्यवादी ने कहा कि हे राजन् ? आप जप, तप, यज्ञ, दान करवाइए मैं तो साधारण आदमी हूं। राजाने कहा मैं सब करवा चुका अब तो आपकी शरण हूं मेरी प्रजा अति दुःखी है तब सत्यवादी संकोच में पड़ा और राजा से और कोई अनुष्ठान करने को कहा। परन्तु राजा दुकान पर से नहीं हटा यहां तक कि धूप चढ़गई और राजा के ऊपर खूब धूप आगई। तब वैश्य ने समझा राजा नहीं मानेगा तो उसने अपनी तराजू का पलड़ा पकड़ कर कहाकि यदि मैंने सर्वदा सत्य बोला है तो वर्षा हो जाय। इतना कहते ही चारों तरफ से बादल उमड़ उमड़ कर आगये और वर्षा होने लगी। राजा को घरपर जाना कठिन होगया। राजा तो दुकान पर सेउठ घरको चलागया और यह वैश्य अपनी दुकानका ताला लगा उस शहर से निकल गया। क्योंकि उसने

विचारा अब सब जान गये हैं अतः अब मेरा पीछा कोई नहीं छोड़ेगा यह विचार वह वहां से चल दिया इस दृष्टान्त से सत्य की महिमा तो जानी ही गई। किन्तु सत्यवादी भी कैसे निरीच्छ निस्पृह होते हैं यह भी समझ में आगया। सत्य वादी अपनी ख्याती कराने में प्रसन्न नहीं होते बल्कि अपने गुण अप्रकट ही रखना चाहते हैं। सत्यवादी निरहंकार होता है। महाभारत में पितामह भीष्मजी ने सत्य के तेरह अङ्ग बतलाये हैं यथा:-

प्राप्यते च यथा सत्यं तच्च श्रोतु मिहार्हसि ।
सत्य त्रयो दश विधं सर्व लोकेषु भारत ॥
सत्यं च समता चैव दमश्चैव न संशयः ।
अमात्सर्य क्षमा चैव ह्री स्तितिक्षानसूयता ॥
त्यागो ध्यान मथार्यत्वं धृतिश्च सततं दया ।
अहिंसा चैव राजेन्द्र सत्याकारा स्त्रयो दश ॥

सत्य किस प्रकार मिलता है यह भी तुझे सुनना चाहिये, हे भरत वंशी! सब लोगों में तेरह प्रकार का कहलाता है। हे राजन्! समता, दम, मत्सरता नहोना, क्षमा,लज्जा, तितिक्षा, असूया न करना, त्याग, ध्यान, आर्यता, धैर्य, नित्य दया और अहिंसा ऐसे तेरह प्रकार का सत्य है।

आत्ममनीष्टे तथा निष्टे रिपौ च समता तथा।
इच्छा द्वेष क्षयं प्राप्य काम क्रोध क्षयं तथा ॥

इच्छा और द्वेष तथा काम और क्रोध का नाश करके अपने प्रिय आत्मा के ऊपर तथा अप्रिय शत्रु के ऊपर समदृष्टि रखना इसका नाम समता (पक्षपात शून्यता) है ॥

दमो नान्य स्पृहा नित्यं गांभीर्य धैर्य मेव च।
अभयं रोग शमनं ज्ञानेनैतदवाप्यते ॥

किसीके धनकी इच्छा नकरे, नित्य गम्भीरता रक्खे, धीरज रक्खे, किसीका भय न करे तथा रोगकी शांति का नाम दम है, यह दम प्राप्ति ज्ञान से ही होती है।

अमात्सर्यं वृषाः प्राहु र्दाने धर्मे च संयमः।
अवस्थितेन नित्यं च सत्यं ना मत्सरी भवेत्।

दान में श्रद्धा रक्खे, धर्माचरण करके नियम का पालन करे, इसको विद्वान मत्सर शून्यता कहते हैं। मनुष्य नित्य दृढ़ रहकर सत्य धर्म का आचरण करता है तब ही अमत्सरी होता है ॥

अक्षमाया क्षमायाश्च प्रियाणी अप्रियाणि च ।
क्षमते सम्मतः साधु साध्वाप्नोति च सत्य वाक् ॥
कल्याणं कुरुते वाढं धीमान्न ग्लायते क्वचित् ।
प्रशान्त वाङ् मनो नित्यं ह्रीस्तु धर्मादवाप्यते ॥

सत्पुरुषों में मान्य और सत्पुरुष अपने को रुचने वाली बातों को और न रुचने वाली बातों को सुनता रहे इसका नाम क्षमा है, सत्य बोलने वाला इस गुण को अच्छे प्रकार से पा सकता है ॥ बुद्धिमान पुरुष दूसरे का अच्छे प्रकार से कल्याण करता है, कभी खिन्न नहीं होता है, तथा जिसकी वाणी और मन शान्त है उस पुरुष में लज्जा रहती है, यह लज्जा धर्माचरण से प्राप्त होती है।

धर्मार्थं हेतो क्षमते नितिक्षा क्षान्ति रुच्यते ।
लोक संग्रहणार्थं वै सातु धैर्येण लभ्यते ॥

धर्म के लिये पुरुष दूसरे को क्षमा करता है, उसका नाम तितिक्षा है इसको क्षान्ति भी कहते हैं, यह गुण लोगों को वश में करने के लिये पाला जाता है यह गुण धीरज से पाया जा सकता है ॥

त्याग स्नेहस्य यत्त्यागो विषयाणां तथैव च ।
राग द्वेष प्रहीणस्य त्यागो भवति नान्यथा ॥

स्नेह और विषयों को छोड़ देने का नाम त्याग है, जो पुरुष राग द्वेष रहित होता है उससे ही त्याग हो सकता है। दूसरे से नहीं हो सकता ॥

आर्यता नाम भूताना यः करोति प्रयत्नतः
शुभं कर्म निराकारो वीतरागस्तथैव च ॥

जिस गुण से मनुष्य उद्योग के साथ प्राणियों का भला करता है और स्वयं अलिप्त तथा राग रहित रहता है उस गुण का नाम आर्यता है ॥

धृति नाम सुखे दुःखे यथा नाप्नोति विक्रियाम् ।
तां भजेत सदा प्राज्ञो य इच्छेद्भूतिमात्मनः ॥

जो मनुष्य सुख दुःख प्राप्त होने पर हर्ष शोक रूप विकार को नहीं प्राप्त होता है उस गुण का नाम धैर्य है, जो बुद्धिमान पुरुष अपना कल्याण चाहे वह नित्य धैर्य गुण का सेवन करे ॥

सर्वथा क्षमिणा भाव्यं तथा सत्य परेण च ।
वीतहर्षभय क्रोधो धृति माप्नोति पंडितः ॥

मनुष्य सदा सत्यवादी और क्षमा शील बना रहे, जो पण्डित पुरुष हर्ष, भय और क्रोध रहित होता है वह धृति को पाता है ॥

अद्रोहः सर्व भूतेषु कर्मणा मनसा गिरा ।
अनुग्रहश्च दानञ्च सतां धर्मः सनातनः ॥

मन वाणी तथा कर्म से किसी प्राणी का द्रोह न करे सबके ऊपर अनुग्रह करे, तथा दान दे यह सत्पुरुषों का सनातन धर्म है ।

एते त्रयो दशाकाराः पृथक् सत्यैक लक्षणाः ।
भजन्ते सत्य मेवेह बृंहयन्ते च भारत ॥

हे भरत वंशी राजन ! यह तेरह प्रकार का सत्य है इसके जो भिन्न२ लक्षण थे वे कहा दिये, महात्मा पुरुष इस सत्य का सेवन करते हैं और इसकी वृद्धि करते हैं ॥

नान्तः शक्यो गुणा नाञ्च वक्तु सत्यस्य पार्थिव ।
अतः सत्यं प्रशंसन्ति विप्राः सपितृ देवताः ॥

हे राजन ! सत्य के गुणों का कहने से पार नहीं मिल सकता, इसलिये ब्राह्मण पितर तथा देवता सत्य की प्रशंसा करते है ॥

नास्ति सत्यात् परो धर्मो नानृतात् पातकं परम् ।
स्थितिर्हि सत्यं धर्मस्य तस्मात् सत्यं न लोपयेत्

सत्य समान धर्म नहीं है और असत्य के समान पाप नहीं है वेद में कहा है कि धर्म सत्य के आश्रय से रहता है इसलिये असत्य न बोले ॥

असत्य वादी का न कोई मित्र है न उसका यश होता है न पुण्य प्राप्ति होती है और न उसका कल्याण होता है जैसे कि काल कूट विष भक्षण से जीवन नहीं रहता । यह पृथ्वि स्तम्भों से धारण की गई हैं उनमें एक स्तम्भ सत्यवादी है । अतः मनुष्य देह तथा पारलौकिक सुख के लिये सत्याचरण करने योग्य है । सत्य से मनुष्य को (धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष) इन चारों पदार्थों की प्राप्ति अति सुगमता से होजाती है ।

अपूर्ण

सद्गुरु शरण ।

[ले० श्री० यशोदादेवी भगवद्भक्ति आश्रम]

मनुष्य को अपने कल्याण के लिए सद्गुरु की शरण लेनी चाहिए । क्योंकि, इस दुस्तर कलिकाल में गुरु की शरण गए बिना मनुष्य का कल्याण होना असम्भव है । अतः गुरु की शरण लेनी चाहिये । सद्गुरु परम दयालु हैं और अशरण की शरण हैं । अनूतमय गुणों के महासागर हैं । उन के पद पंकजों में प्रेम हुए, बिना अथवा उनकी कृपा दृष्टि संपादन करे बिना मनुष्य के मन की दौर अथवा भ्रम दूर नहीं हो सकता । मनुष्य का भ्रम दूर तब ही हो सकता है । जबकि सद्गुरु की परम दया होती है । कहा भी है कि:-

गुरु चरण पहिचान बिन, मिटि न मनकी दौर ।
जन्म गंवाये बादि हि, रटत पराये पौर ॥

अतः परमात्मा रूपी गुरु की शरण में जाना चाहिए । वास्तवमें गुरु की महिमा अपार है । गुरु मनुष्य को अज्ञान रूपी अन्धकार में उपदेश रूपी प्रकाश देकर सत्यपदार्थों के दर्शन कराते हैं । अर्थात् उनके

अन्तःकरण में सद्गुणों का विकास कराते हैं और दुःख रूपी संसार समुद्र से पार करते हैं। अतः हे मनुष्यो ! तुम सब सुखों के प्रकाश करने वाले गुरु शरण में आओ। जो मनुष्य जन्म भर गुरु की शरण में रहते हैं उन के आनन्द और सुख को कौन वर्णन कर सकता है। जैसे कि:-

तत्वं किमपि काव्यानां जानाति विरलो भुवि।
मार्मिकं कोमरन्दानां मन्तरेण मधु व्रतम् ॥१

काव्य के तत्व को कोई विरला ही जानता है मधुव्रत (भौंरा) के सिवाय पुष्पों के मधुरस का मर्म और स्वाद जानने वाला कौन है ? परन्तु वहां तो समस्त संसार के सुखों को तिलांजली देनी पड़ती है। दया बाई कहती हैं:-

या जगमें कोई है नहीं, गुरु सम दीन दयाल।
सरनागत कूं जानि के, भले करैं प्रति पाल ॥

शरण रहित मनुष्य ना समझी के कारण भिन्न २ स्थानों में भ्रमित हुआ फिरता है। वह केवल शरीर कष्ट के और क्या लाभ प्राप्त कर सकता है। यह सब भ्रम गुरु की शरण न जाने के ही कारण है जो मनुष्य गुरु की शरण आते हैं उन मनुष्यों को किस पदार्थ की कमी रहती है अर्थात् सभी पदार्थ प्राप्य है ! जो संपूर्ण संसार के और नित्य सुख के देने वाला है वह क्या उस की इच्छा पूरी न करेगा अपितु अवश्य पूरी करेगा। क्योंकि वह तो बिना जड़की अमरबेल को भी पोषता है। रहीम कवि। कहते हैं:-

अमर बेलि बिन मूलकी, प्रीति पालत है ताहि।
रहिमन ऐसे प्रभुहि तजि, खोजत फिरये काहि ॥

गीता में भी श्रीकृष्णचन्द्र जी अर्जुन को कहते हैं।

सर्व धर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहंत्वां सर्व पापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः ॥

तू सर्व धर्मों को छोड़ कर मेरी शरण में आ, अर्थात् मुझको भज मैं तुझको सर्व पापों से मुक्त करूंगा शोच मत कर। इसलिए प्रथम गुरु ही की शरण में आना चाहिए। सहजो बाई कहती हैं:-

सहजो कारज जगत कें, गुरु बिन पूरे नाहि।
हरि तो गुरु बिन क्यों मिले, समझ देख मन माहि

मर्यादा पुरुषोत्तम रामचंद्र जी ने महामुनि वशिष्ट जी से कहा है हे मुनिवर ! जिस संसार रूपी महासागर में दुःख रूपी अनन्त, अगाध, तथा लाखों किरोड़ों बड़े २ मगरमच्छ और घड़ियाल हैं उसका पार करना महा कठिन है। तथापि आपकी शरण में आनेसे मुझको सुगम होगया है अर्थात् परम शांति प्राप्त हो गई है। अब हम इस विषयपर एक दृष्टांत सुनाते हैं। एक राजा बड़ा आलसी था वह राज काज को जरा भी न देखता था। सम्पूर्ण भार वजीर के शिर पर था। वजीर यदि किसी जरूरी काम की, आज्ञा लेने को आता, तो राजा उसे घण्टों, द्वार पर बिठाये रखता पर अन्दर न बुलाता। इससे मंत्रीको घृणा हो गई। उस ने घर आकर पुत्रों से कहा कि चार घण्टों में जितना धन और सामान ले जा सकते हो दूसरे राज्य में ले जाओ। मैं अब इस संसार को त्याग कर परमात्मा रूपी गुरु से लौ लगाऊंगा। लड़के जितना धन ले जा सके ले गये। शेष धन वजीर ने गरीबों को लुटा दिया और आप (किसी गुरु की शरण में जा पहुंचे। दो तीन दिन बाद जब उस आलसी राजा के राज्य में गड़बड़ फैली तो उसे अपने प्रधान मंत्री की याद आयी। बुलाने को आदमी भेजे तो मालूम हुआ कि वह तो सद्गुरु की शरण में गया है। राजा स्वयं उस के पास गया और बोला, हे मंत्रीवर ! तुम इतने बड़े राज्य प्रधान मंत्री और कर्ताधर्ता थे तुम यह सब सुखैश्वर्य छोड़ क्यों वनमें गुरुकी शरण में आयेहो ? तुम्हें इससे क्या मिला ? मंत्रीने कहा, महाराज ! गुरुकी शरणमें आनेसे इतना तो चार दिनमें ही मिलगया कि घंटों आप के द्वार पर आप की प्रतीक्षा में पांव पीटा करता था परंतु आप दर्शन तक न देते थे। आज गुरु शरण के प्रताप से श्रीमान् सपरिवार मेरे स्थानपर मुझे

आदरणीय समझ कर इस सघन वन में पधारे हैं। यह तो दो तीन दिनकी कमाई है। आगेकी बात फिर पूछसकते हैं। इसमें संदेह नहीं जो सबकी आशा तज कर एक परमात्मा रूपी सद्गुरु की शरण में आता है उसे कोई अभाव नहीं रहता। तथापि पक्के दृढ़ विश्वास की आवश्यकता है। पाठक गण! समझ गए होंगे कि गुरुकी शरणमें आनेसे कितना लाभ है। असाध्य पदार्थ भी साध्य हो सकता है।

न गुरोः सदृशी माता न गुरोः सदृशः पिता।
यस्तारयति संघोरं संसाराब्धिं सुदुस्तरम्॥

गुरु के सदृश न तो माता है और न गुरु के सदृश पिता है जो अति दुस्तर घोर संसार रूपी समुद्र से पार करता है और फिर सद्गुरु कैसे हैं?

सद्गुरु ज्ञान विराग योग के।
विबुध वैद्य भव भीम रोग के॥

वेद स्मृति पुराण और बड़े २ शास्त्रों के पढ़ने से अथवा सुनने से और उनके अनुसार कर्म करने से मनुष्य को कोई बड़ा लाभ प्राप्त नहीं हो सकता जोकि सद्गुरु की शरण में आने से हो सकता है! मनुष्य की आयु का कोई निश्चय नहीं यह जल की तरङ्गों के समान चंचल और पानी के बुलबले के समान क्षणभङ्गुर है। जो स्वांस बाहर आता है वह वापिस आवे और न भी आवे। ऐसे क्षण भंगुर जीवन से और क्या लाभ मिल सकता है? केवल गुरुकी शरण जानेमें ही लाभ प्राप्त हो सकता है अतः सब को गुरु की शरण में आना चाहिए। जिस मनुष्य को भगवद् प्राप्ति अथवा दुनियां में परोपकारादि कार्य करने की इच्छा हो तो प्रथम गुरुकी शरण में आना चाहिए। सहजो बाई ने कहा है:-

परमेश्वर से गुरु बड़े गावत वेद पुराण।
सहजो हरिके भक्त हैं गुरु के घर भगवान्॥
सकल विकल सब छोड़ कर गुरु चरणन चित्त लाव
सहजो निश्चै हर मिलै बहुर न ऐसा दाव॥

ऐसा समझ कर कि यह संसार मिथ्या है और नाशवान है यहां कोई किसी का साथी नहीं है फिर वृथा सोच फिक्र में अपनी दुर्लभ देह को नाश करना अथवा जिस कार्य के लिए जगत में आए हैं उस सद्गुरु की शरण में न आके क्षणिक संसार के सुखों को सुख मान कर मनुष्य शरीर को वृथा खोडालना इससे अधिक और क्या मूर्खता होसकती है। शिवाजी महाराज का जीवन पढ़ा ही होगा जिन्होंने समस्त राज सुख को तृण समान जान कर आप गुरु की शरण में प्राप्त हुए। शिवा जी को क्या क्या सुख और आनन्द प्राप्त हुवा सो तो शिवाजी ही जान सकते हैं। तथापि अनुमान द्वारा भी जान सकते हैं। महात्मा बुद्ध के जमाने में किसी स्त्री का इकलौता पुत्र मर गया पुत्र शोक सब शोकों से अधिक होता है। इस लिए वह स्त्री शोकाभिभूत हो कर महात्मा बुद्ध की शरण में गई और उन से पुत्र जिला देने की प्रार्थना की, महात्मा दयालु होते हैं। उन्होंने कहा कि जिस घर में कोई न मरा हो उस घर से राई के दाने ले आओ यदि तुम राई के दाने ले आई तो हम तुम्हारे पुत्रको जीवित कर देंगे। वह स्त्री घर २ पूछती फिरी, पर उसे एक घर भी ऐसा न मिला जिस घर में मौत न आई हो। अतः वह वापिस गुरु की शरण में आई और सब वृतान्त वर्णन किया। सुनते ही महात्मा बुद्धने कहा कि मौत प्राणीमात्र के पीछे लगी हुई है। जो जन्मा है वह अवश्य मरेगा। यह संसार नाशवान है आगे पीछे सब को इस जगत से चल देना है कोई सर्वदा के लिए यहां नहीं आया इसलिए इस में शोक की कोई बात नहीं। मूर्ख ही मरे हुए का शोक किया करते हैं। ज्ञानी अथवा भगवद् प्रेमी नहीं करते। महात्मा के यह उपदेश सुनते ही स्त्री का शोक दूर होगया और उसे परम शांति प्राप्त हुई। पाठक गण! समझ गए होंगे गुरु की शरण में आने से कितना लाभ और सुख है। अतः सब प्राणियोंको अपने कल्याणार्थ गुरु शरण में आना चाहिए यही प्रार्थना है।

भक्तों के चरित्र

सूरदास जी

सूरदास जी की अगाध भक्ति और प्रेम की विवेचना करनेमें कौन समर्थ है ? जिस समय सूरदासजी के अतुल प्रेम व भक्ति के राग गाए जाते हैं उस समय ऐसा मालूम होता है कि समुद्र उमड़कर आस पासकी वस्तुओंको जलमय कर रहा है। सूरका रोम २ श्याम की भक्तिमें इतना डूबा मालूम होता है कि सूरको श्यामसे प्रथक देखना कठिन होजाता है सूरदास जी ने गोपियों के मुख से श्याम के प्रति जो कुछ कहलवाया है उसके एक २ पद से ऐसा प्रतीत होता है मानो सूरदास जी सर्वत्र भगवान का ही रूप देखते थे।

संसार के समस्त साहित्य को पढ जाइए प्रेम का जो भाव सूरदास जी की कविता में मिलेगा वह अन्य किसी कवि की कविता में मिलना कठिन ही नहीं वरन असम्भव है। जिस अद्भुत व विलक्षण प्रेम में गद् गद् होकर सूरदास जी ने भगवान के चरित्रों का बखान किया है उसको सुनकर शुष्क हृदय भी आनन्द से प्रफुलित हो जाता है और नास्तिक को भी उस समय भगवान के चरणों में प्रीति हो जाती है। प्रकृति की सारी अवस्थाओं को कविता द्वारा प्रगट कर देना सूरदास जी का ही काम था।

सूरदास जी के जीवन के सम्बन्ध में भिन्न २ कहानियां प्रचलित हैं परन्तु मुख्यतः यह बात प्रसिद्ध है कि सूर दास जी पहले संदीला (लखनउ) में बादशाही चकले दार थे। तहसील वसूल का काम इनके सुपुर्द था। यह अपना काम बड़ी सरचाई और परिश्रम से करते थे यही कारण है कि इनको ऐसी विश्वसनीय जगह पर नियुक्त किया गया था, परन्तु परमात्माने इनको किसी विशेष कार्य के लिए भेजा था। यह अपना अधिक समय भजन ध्यान व साधु सेवा में व्यतीत करते थे। एक बार साधुओं की बहुत बड़ी मण्डली संदीला में आगई। इन्होंने साधु सेवा में समस्त बादशाही खजाने को खर्च करदिया। जब रुपया पूरा न कर सके तो राज दण्ड के भय से एक दोहा लिखकर बादशाह के पास भेजदिया और आप वृन्दावन को चले गए। दोहा यह है-

धरा धराया माल खजाना,
सब साधन मिल गटके।
सूरदास खटके के भय से,
वृंदावन को सटके॥

जब बादशाह को यह बात मालूम हुई तो वह मन में तो नाराज हुआ परन्तु दोहे को देखकर

हंस पड़ा और उसने भी एक ऐसा ही दोहा लिखकर सूरदास जी के पास भेजा जिसका मतलब यह था कि भटके सो तो अच्छा किया परंतु सटके यह अच्छा नहीं किया। अकबर बहुत बुद्धिमान था वह इनकी भक्ति पर बहुत प्रसन्न हुआ और बुलानेको आदमी भेजा परंतु वह फिर नहीं आए।

कहते हैं सूरदास जी गृहस्थ का त्याग करके विरक्त होगए परंतु इन में काम का अंग बहुत था वह उसे दमन नहीं कर सके। पहिले एक चिंतामणि नाम की गणिका के मोह जाल में फंस गए पीछे एक दिन भ्रमण करते २ एक ग्राम में आए वहां कुछ स्त्रियां कूए से जल भरके अपने घर को जा रही थीं उनमें एक स्त्री बड़ी रूपवती थी, वह उस के पीछे हो लिए। जब वह स्त्री अपने घर में चली गई वह दरवाजे पर बैठ गए। कुछ देर बाद उस का पति आया वह भक्त पुरुष था। उस ने इनको विरक्त महात्मा समझ प्रणाम किया और भोजन के लिए प्रार्थना की। फिर अपनी स्त्री को आज्ञा देकर कि इन महात्मा को भोजन करवाना और जो आज्ञा यह देवें वही करना, स्वयं किसी कार्यवश बाहर चला गया। वह स्त्री पतिव्रता थी उसने बड़े प्रेम से भोजन बनाया और सूरदास जी की सेवा में अर्पण किया परंतु वह तो काम वासना से अन्धे हो रहे थे। भोजन करने के पश्चात उस धर्मात्मा स्त्री से हंसी करने लगे। वह साधु के वेश में इन पिशाच भावों को देखकर चित्त में बहुत दुखी हुई परंतु सती और पतिव्रता थी पतिकी आज्ञा का ख्याल था, वह सोच कर बोली "दीपक की ज्योति की चमक दमक नाशवान और क्षण मात्र के लिए है। ऐ मूर्ख पतंगे तू कैसा बावला हो गया है। जान पड़ता है तेरा मृत्यु के दिन निकट आगए हैं। तू जल भुन कर राख हो जावेगा। यदि तुझ को स्वांग ही बनाना था तो कुछ भी तो सचाई का ध्यान रखना चाहिए था। सच है जहां सचाई नहीं होती वहां भक्ति और प्रेमका निरादर और अपमान होता है"।

सूरदास जी के हृदय पर इन बातों का गहरा प्रभाव पड़ा, उनकी दैवी वृत्तियां जाग उठीं वह अपने कृत्य को मन ही मन धिक्कारने लगे और हाथ जोड़ कर उस स्त्री से बोले कि मुझे दो सूइयों की जरूरत है। उस सुंदरी ने दो सूइयां उनको लाकर देदीं। उन्होंने देखते देखते अपनी दोनों आंखें फोड़ लीं और अंधे हो गए। आंख से रक्त की धारा बह निकली। वह अचेत होकर पृथ्वी पर गिर पड़े। तन, बदनकी सुध जाती रही। ब्राह्मणी ने मरहम पट्टी की। थोड़ी देर में ब्राह्मण भी वापिस आ गया वह इनकी दशा देख कर महा दुःखी हुआ। जब इनको होश आया तो क्षमा प्रार्थना की परंतु सूरदास जी बोले यह सुंदरी मेरी गुरु है, इसने मेरा कल्याण कर दिया। इस ने मुझे सोते से जगा दिया है। सब दोष आंखों का था :-

न रहे बांस न बाजे बांसरी।

दृष्टि दोषसे छुट्टी पाकर सूरदास जी वृंदावन को चले गए अंधे होने के कारण बाट चलने में बड़ा कष्ट होता था। कई बार इधर उधर गिर पड़े। अपने भक्त की यह दुःखित अवस्था देख भगवान बालक रूप में पधारे और पूछने लगे सूरदास कहां जाते हो? सूरदास जी ने उत्तर दिया वृंदावन को जाता हूं। भगवान ने कहा बिना साथी के किस तरह वृन्दावन पहुंचोगे? सूरदास जी ने उत्तर दिया:

सुनो जिय यशुदा को प्यारा।
सोई साथी है एक हमारा॥

तब भगवान ने हाथ पकड़ कर कहा चलो निकट एक बाग़ है आज रात को यहां विश्राम करके कल आगे जाना। भगवान ने सूरदास को लाकर आराम से ठैराया और जल पान करवाया। भगवान के कोमल हाथ देख कर सूरदास जी बोले कि यह हाथ तो कृष्ण के से मालूम होते हैं। इतना सुनते ही भगवान हाथ छुड़ाकर चल दिए। उस समय सूरदास जी ने यह दोहा कहा:-

हाथ छुड़ाए जात हो निबल जान कर मोहि।
हृदय में से निकस जाओगे तब मर्द बदूंगा तोहि

सवेरे उठकर वृन्दावन की तरफ चल दिए। कहते हैं कि वृन्दावन जाकर सेवा कुंज में आसन जमालिया और मन में दृढ़ संकल्प कर लिया कि जब तक भगवान कृष्ण के दर्शन न कर लूंगा अन्न जल कुछ भी गृहण नहीं करूंगा। सत्य संकल्प की बात है विश्वास और दृढ़ता के सामने पहाड़ पानी की भांति बहकर चलने लगते हैं। यह संसार का पसारा भी तो संकल्प का फल है। प्रकृति की सारी तसवीरें संकल्प से ही बनी हैं। जो भगवान गज की सच्ची टेर सुनकर नंगे पैर आए थे वह सूरदास जी के सत्य संकल्प करने पर क्यों न दया करते? कहते हैं कि भगवान सूरदास जी के लिए दूध भात लेकर स्वयं पधारे। भगवान के आते ही सूरदास जी के नेत्र खुल गए, दर्शन करके सूरदास जी कृत्य कृत्य होगए। सब संशय और भय छूट गए। वह रात दिन भगवान के प्रेम में मस्त रहने लगे और नित्य नए शब्द व भजन बना कर भगवान की भक्ति का प्रचार करने लगे।

कहते हैं कि जब सूरदास जी की भक्ति की खबर देश में फैल गई तो चिन्ता मणि गणिका भी उनके दर्शन करने वृन्दावन आई। सूरदास जी ने उसको बड़े आदर मान से बिठाया और कहा कि तेरे उपदेश के कारण ही मुझ पर भगवान की कृपा हुई है। सूरदास जी के लिए भगवान का प्रसाद आया तो उन्होंने चिन्ता मणि को देदिया कि आज तुम प्रसाद पाओ। चिन्तामणि ने कहा कि जिस प्रकार भगवान ने स्वयं प्रगट होकर आपको प्रसाद दिया था ऐसे ही मैं भगवान के हाथ से प्रसाद ग्रहण करूंगी। उसकी दृढ़ प्रीति व भक्ति देखकर भगवान ने उनको भी दर्शन दिए और उसका जीवन सफल किया।

सूरदास जी रात दिन भगवान के चरित्र गाने में लीन रहते थे, उन्होंने निश्चय किया था कि सवा लाख भजन बनावेंगे परन्तु ७५ हज़ार भजन बनाने पाए थे कि शरीर की अवधि समाप्त हो गई। वह सूर सागर को पूर्ण नहीं कर सके और इस शरीर को छोड़ना पड़ा।

अकबर का सेनापति अबदुल रहीम खान खाना हिन्दी संस्कृत का बड़ा विद्वान और भगवान कृष्ण का भक्त था। उसने सूरदास जी के भजनों का संग्रह करना आरम्भ किया। एक पद के लिए एक मोहर इनाम रक्खी। इस लालच में आकर लोग सूरदास जी के नाम से बनावटी पद बनाकर लाने लगे। सत्य और झूठ में पहचान करना बड़ा कठिन था। खानखाना भक्त था उसने एक पद को तराजू में रखकर तोलना आरम्भ किया। कहते हैं जो

बनावटी पद होते थे वह पूरे नहीं उतरतेथे। इस तरह ७५ हजार पद जिनके अन्त में सूरदास का नाम आता है कट्ठे किए गए। शेष ५० हजार वह हैं जिनके अन्त में सूरश्याम नाम आता है। इनके सम्बन्ध में किसी का तो यह कहना है कि यह स्वयं भगवान कृष्ण ने बनाए हैं और कुछ का कहना है कि यह अन्य कवियों द्वारा बनवाए गए हैं। कुछ भी हो परन्तु इस में सन्देह नहीं कि यह पद भक्ति व प्रेम से पूर्ण व चित्त को खेंचने वाले हैं। सूरदास जी की कविता द्वारा हजारों नर नारियां भक्ति का रस पान करके आनन्द में गोते लगा चुके हैं और जब तक संसार की स्थिति है इसी तरह मनुष्य इस अमृतानन्द से लाभ उठाते रहेंगे। इस कलिकाल में विशेषकर सूरदास जी और तुलसी दासजी की कविता के कारण ही लोगों में भक्ति भाव दिखाई देता है। भगवान अपनी ऐसी प्रेमी आत्माओं को इस समय फिर भेजे क्योंकि बिना भक्ति भाव के लोगों के जीवन शुष्क होगए हैं। संसार ईर्षा, द्वेष और आशा व तृष्णा की भट्टी में जल रहा है॥

यक्ष युधिष्ठिर संवाद

एक समय पांचों भाई पाण्डव द्रौपदी सहित द्वैत बन में रहते थे। एक दिन युधिष्ठिर के पास दौड़ता हुआ एक ब्राह्मण आया और संतप्त हृदय से युधिष्ठिर को कहने लगा "मैं ने अपनी अरणी और मथानी (यज्ञ की अग्नि उत्पन्न करने का यंत्र) एक वृक्ष में टांग रक्खी थी। एक मृग ने उस वृक्षसे अपने सींग रगड़े तो मेरा अग्नि उत्पन्न करने का यंत्र उसके सींगों में उलझ गया। वह महामृग उस यंत्र को लेकर उछलता कूदता चला गया। हे पाण्डव! कृपा करके वह मेरा यंत्र लाकर दो" ब्राह्मण के इस प्रकार के वचन सुन कर पांचों भाई उस मृग के पीछे गए। जब वह उस मृग के निकट पहुंचे तब उस पर अनेक प्रकार के बाणों का प्रहार किया परन्तु वह उस मृग को बींध न सके। पांचों भाई मृग का पीछा करते ही रहे, अन्तमें वह महामृग दृष्टि से ओझल होगया। तब भूख प्यास से दुःखी हुए वह पांचों भाई उस गहन वन में ठण्डी छाया वाले एक वट के नीचे बैठ गए। युधिष्ठिर ने नकुल से कहा "हे तात! हम सब प्यास से व्याकुल हैं तुम जाकर कहीं से जल लाओ"। तब नकुल ने एक वृक्ष पर चढ़ कर इतस्ततः दृष्टि प्रसारित करके देखा कि थोड़ी ही दूर पर सारसों का शब्द हो रहा है। उसे यह निश्चय होगया कि वहां जल अवश्य होगा। अतः वह उस स्थान पर गया। उसने वहां एक अत्यंत विमल जल का सरोवर देखा जोकि अनेक प्रकार के पक्षियों से घिरा हुवा था। नकुल शीतल जल का पान करके अपनी तृषा को शांत करने की इच्छा से सरोवर के निकट गया। तत्क्षण यह आकाश वाणी हुई:-

मा तात साहसं कार्षीर्मम पूर्वं परिग्रह।
प्रश्नानुक्त्वातु माद्रेय ततः पिब हरस्व च॥

"हे प्यारे! मत साहस कर यह मेरी मिलकियत है। हे माद्री पुत्र! मेरे प्रश्नों का उत्तर दो, तब पीओ और ले जाओ।" नकुलने इस वाक्य को सुन कर इसका अनादर किया और जल पी लिया। जल के पीते ही वह महापराक्रमी शुष्क वृक्ष की भांति

गिर पड़ा। नकुल को न आया हुवा देख कर युधिष्ठिर ने सहदेव से कहा "हे भाई नकुल को गए बहुत देर हो गई है तुम शीघ्र जाकर नकुल के सहित जल लेकर आओ।" सहदेव ने तथास्तु कह कर सरोवर की ओर प्रस्थान किया। वहां जाकर अपने भाई को मरण दशा में पाया। सहदेव भाई के शोक से बड़ा सन्ताप करने लगा। परन्तु वह तृषा से बहुत घबड़ा रहा था अतः जल की ओर को दौड़ा। तब पुनः आकाश वाणी ने कहा "हे तात! तू पानी पीने का साहस न करना, मेरा यह नियम है कि जो कोई मेरे प्रश्नों का उत्तर दे वह ही इस जलाशय का जल ग्रहण कर सकता है। अतः तू मेरे प्रश्नों का उत्तर देकर इच्छानुसार जल ग्रहण करना" सहदेव प्यास से बहुत व्याकुल था अतः उस ने भी इस आकाश वाणी का तिरस्कार किया और जैसे ही वह जल पीने लगा कि मूर्छित होकर भूमि पर गिर पड़ा। इन दोनों को भी न आया हुवा देखकर युधिष्ठिर ने अर्जुन से कहा 'हे भाई! नकुल सहदेव को गए चिरकाल हो गया है। वह अब तक जल ले कर नहीं लौटे हैं तुम शीघ्र जाओ और नकुल सहदेव सहित जल ले कर आओ।" ऐसी आज्ञा दिया हुवा मेधावी अर्जुन धनुषबाण लेकर और तलवार लटका कर उस सरोवर पर पहुंचा। वहां जाकर नरसिंह कुन्ति नन्दन ने अपने दोनों भाईयों को गाढ सोए हुओं की भांति देख कर अपना धनुष उठा कर चारों ओर दृष्टि डाली, परन्तु उसे कोई भी प्राणी दृष्टिगोचर न हुवा तब वह भी प्यास से व्याकुल हुवा जल की ओर दौड़ा। तब पुनः आकाशवाणी ने कहा "हे कौंतेय! क्यों दुःख उठाते हो, इस जल को तुम बल से नहीं पी सकते। यदि तुम मेरे प्रश्नों का उत्तर दे सकते हो तो उत्तर दो फिर जल पी भी लो और ले भी जाओ। अर्जुन यह सुन कर क्रोध पूर्वक बोला "कि तू छिपकर मुझे जल पीने से क्यों रोकता है। यदि तेरे अन्दर कुछ बलपौरुष है तो मेरे समक्ष में तो आ जिस से मैं तुझे बाणों से बींध डालूं फिर तू मुझे ऐसा नहीं कह सकेगा"। इस प्रकार कहकर अर्जुन ने अनेक प्रकार के अस्त्र शस्त्रों की वर्षा आरंभ कर दी परन्तु इस से कुछ भी प्रयोजन सिद्ध हुवा न देख कर अपना शब्द वेधीपन भी दिखला डाला। तब पुनः आकाश वाणी ने कहा, "तू इस प्रकार वृथा उद्योग क्यों करता है, मेरे प्रश्नों का उत्तर देकर पीछे भले ही जल पीना और ले भी जाना। यदि तू मेरे प्रश्नों का उत्तर दिए बिना जल पीयेगा तो निःसंदेह तेरा मरण होगा।" सव्यसाची अर्जुन ने इन वचनों का निरादर करके जल पी लिया, परंतु जल पीते ही तुरंत मूर्छित होकर भूमि पर गिर पड़ा। अर्जुन को भी आया हुवा न देखकर युधिष्ठिर बहुत व्याकुल हुए और भीमसेन से कहने लगे कि, "हे भाई भीम! नकुल, सहदेव और अर्जुन जल लेने के लिए गए थे परन्तु वह अब तक नहीं आए। अतः तुम शीघ्र जाओ और जल सहित उनको लेकर आओ। भीमसेन तथास्तु कह कर जिस दिशा में उस के भाई गए थे उसी ओर को गया। वहां सिंह समान अपने भाईयों को भूमि पर पड़े देख कर प्यास से बहुत ही घबड़ाया हुवा भीमसेन खिन्न हो गया, फिर उस ने सोचा कि यह काम किसी मनुष्य का नहीं है यह कर्म तो निश्चय ही यक्ष और राक्षों का ही हो सकता है। इन से अवश्य युद्ध करना होगा, अतः जल पीकर ही भली प्रकार युद्ध कर सकूंगा यह सोच कर वह सरोवर के निकट पहुंचा ही था कि आकाश वाणी

ने कहा "हे भीमसेन ! पानी पीने का साहस करने से पूर्व मेरे नियमानुसार पहिले मेरे प्रश्नों का उत्तर दे, फिर इच्छानुसार जल पी और ले भी जाना"। भीमसेन उस के प्रश्नों का उत्तर दिए ही बिना जल पीने लगा कि तुरंत मूर्छित हो कर भूमि पर गिर पड़ा। भीमसेन को भी न आया देखकर युधिष्ठिर बहुत ही चिंतित हुए और सोचने लगे कि क्या कारण है मेरे चारों वीर भाई जल लेने गए और उन में से अब तक कोई भी नहीं लौटा। तब शोक से खिन्न होकर युधिष्ठिर भी उस सरोवर की ओर चले। राजा युधिष्ठिर ने सरोवर के पास जैसे प्रलय के समय लोकपाल स्वर्ग से नीचे को गिरते हैं वैसे ही इंद्र के समान गौरव वाले अपने भाईयों को भूमि पर पड़े हुए देखा। राजा युधिष्ठिर ने अपने भाईयों की यह दशा देख कर गरम और लम्बे श्वास छोड़े। उनकी आंखों में शोक के आंसू आ गए और उच्च स्वर से विलाप करके कहने लगे कि, "हे भीम ! तूने प्रतिज्ञा की थी कि मैं रण में गदा की मार से दुर्योधन की जंघाओं को तोड़ डालूंगा, परंतु हे वीर ! वह तेरी प्रतिज्ञा आज तेरे मर जाने से असत्य होगई। हे अर्जुन ! तेरे जन्मके समय देवताओं ने तेरे पिता कुंति माता से कहा था कि यह तेरा पुत्र इंद्रके समान पराक्रमी होगा। इसको रण भूमि में कोई भी जीतने को समर्थ नहीं होगा। हाय ! ऐसा विजय पाने वाला महाबलवान् जिष्णु आज कैसे मरण को प्राप्त होगया! हायरे ! हमने अपने स्वामी के समान जिस धनंजय का आश्रय लेकर इतने कष्ट सहे हैं वह अर्जुन आज हमारी सब आशाओं का नाश करके भूमि पर सो रहा है। हाय ! मेरा हृदय बड़ा कठोर है क्योंकि नकुल और सहदेव को भूमि पर पड़े हुए देखकर भी फट नहीं जाता। वास्तव में यह पत्थर के सार से बनाया हुआ प्रतीत होता है। हे भाईयो ! तुम्हारे शरीरों में किसी प्रकार का घाव नहीं है। तुम्हारे बाण भी तय्यार किए हुए नहीं हैं अतः तुम किसी से पराजित हो गए हो ऐसा भी नहीं प्रतीत होता फिर योग्यता के अनुसार पराक्रम किये बिना कैसे भूमि पर अचेत पड़े हो"। फिर धर्मात्मा युधिष्ठिर ने अपने मन में विचार किया कि कहीं कपट भरी बुद्धि वाले दुर्योधन ने शकुनी के द्वारा हम से छिप कर यह विषैला सरोवर तो नहीं बना दिया है ! कहीं गुप्त पुरुषों द्वारा उस दुष्टात्मा ने यह पाप कर्म तो नहीं कराया है। परंतु नहीं यह जल तो विषैला नहीं हो सकता क्योंकि अनेक प्राणी इस जल को पीकर आनन्द कररहे हैं। मेरे सारे भाई भी विषैले जल से ही मरे हों यह भी उन के मुख मंडल से प्रतीत नहीं होता। इस प्रकार सोचते २ युधिष्ठिर उस सरोवर की ओर चले, उसी समय आकाश वाणी हुई कि "मैं सिवाल और मछलियों से आजीविका चलाने वाला बगुला हूं। मैं ने ही तेरे चारों भाईयों को मार डाला है। हे युधिष्ठिर ! यदि मेरे प्रश्नों का उत्तर दिए बिना तू जल पीने का साहस करेगा तो तू भी इन अपने मरे हुए भाईयोंके समान इनके साथ पांचवां होगा। युधिष्ठिर ने कहा मैं तुम से पूछता हूं कि आप कौन देवता हैं। यह काम पक्षीका नहीं होसकता बगुले ने कहा कि, "मैं यक्ष हूं। हे राजन् मैंने तेरे इन भाईयों को बार बार रोका परंतु यह मेरे रोकने पर भी बलात जल लेना चाहते थे। इस हेतु मैंने इन्हें मार डाला। हे युधिष्ठिर ! तुम भी जल पीने का साहस मत करना पहले मेरे प्रश्नों का उत्तर दो फिर इच्छानुसार जल पीवो"। युधिष्ठिर ने कहा

"हे यक्ष मैं यथा बुद्धि तेरे प्रश्नों का उत्तर दूंगा"। तब यक्ष ने पूछा:-

किं स्विदादित्यमुन्नयति के च तस्याभितश्चराः।
कश्चैनमस्तं नयति कस्मिंश्च प्रतिष्ठितः ॥

इस विश्व में कौन सूर्य को उदय करता है, कौन उसके चारों ओर घूमने वाले हैं, कौन उसे अस्त करता है और किस में ठहरा हुवा है ? युधिष्ठिर ने उत्तर दिया:-

ब्रह्मादित्यमुन्नयति देवास्तस्याभितश्चराः।
धर्मश्चास्तं नयति च सत्ये च प्रतिष्ठितः ॥

ब्रह्म सूर्य को उदय करता है, देवता उसके चारों ओर घूमते हैं धर्म उसे अस्त करता है और सत्य में ठहरा हुवा है। यक्ष ने पूछा:-

को मोह उच्यते राजन् कश्च मानः प्रकीर्तितः।
किमालस्यं च विज्ञेयं कश्च शोकः प्रकीर्तितः॥

हे राजन ! मोह किसे कहते हैं, मान किसे कहते हैं, आलस्य क्या है और शोक किसे कहते हैं। युधिष्ठिर ने उत्तर दिया:-

मोहोहिधर्म मूढत्वं मानस्त्वात्माभिमानिता।
धर्म निष्क्रियताऽऽलस्यं शोकस्तज्ज्ञानमुच्यते ॥

धर्म में भूल मोह है, अपने को बड़ा मानना अभिमान है, धर्मका अनुष्ठान न करना आलस्य है और अज्ञान शोक कहलाता है। इस प्रकार से बहुत से प्रश्न यक्ष ने युधिष्ठिर से किये (यह प्रश्न भक्ति अंक २ वर्ष २ पृष्ठ ६० में निकाले जा चुके हैं) और युधिष्ठिर ने सब का यथोचित उत्तर दिया। तदनन्तर यक्ष ने पूछा कि:-

को मोदते किमाश्चर्यं कः पन्थाः का च वार्तिका।
वद मे चतुरः प्रश्नान् मृता जीवन्तु बान्धवाः॥

जगत् में सुखी कौन है, आश्चर्य क्या है, मार्ग कौन है और वार्ता क्या है ? हे युधिष्ठिर यदि इन चारों प्रश्नों का उत्तर देदो तो मैं इन तुम्हारे मरे हुए भाईयों को जीवित करदूं। तब धर्म राज ने कहा:-

दिवसस्याष्टमे भागे शाकं पचति स्वे गृहे।
अनृणी चाप्रवासी च स वारिचर मोदते ॥

हे वारीचर ! जो पुरुष इस संसार में न तो किसी का ऋणि है और न ही परदेश में रहता है वह पुरुष चाहे निर्धनता वश दिन के पांचवें वा छटे पहर में शाक पात आदि भक्षण करके ही निर्वाह करता हो, वह ही सुखी है। यह यक्ष के पहिले प्रश्न का उत्तर है।

अहन्यहनि भूतानि गच्छन्ती यमालयम्।
शेषाः स्थावरमिच्छन्ति किमाश्चर्यमतः परम् ॥

नित्य प्रति मनुष्य मर कर यम राज के घर पर जारहे हैं। उनको यम गृह जाते हुए देख कर भी शेष बचे हुए मनुष्य सदा जीवित रहना चाहते हैं, इससे अधिक और क्या आश्चर्य होसकता है ? यह दूसरे प्रश्न का उत्तर है।

तर्कोऽप्रतिष्ठः श्रुतयो विभिन्ना,
नैको ऋषिर्यस्य मतं प्रमाणम्।
धर्मस्य तत्वं निहितं गुहायां,
महाजनो येन गतः स पन्थाः ॥

तर्क से निश्चय नहीं हो सकता, श्रुतियें एक

दूसरी से भिन्न अर्थ का प्रतिपादन करती हैं, एक ऋषि नहीं जिसकी बात को प्रमाण मान मनुष्य अपना एक निश्चय कर सके। धर्मका तत्व गुहा में स्थित है। अतः महात्माजन जिस मार्ग पर चले हैं वही सत्य मार्ग है। यह यक्ष के तीसरे प्रश्न का उत्तर है।

अस्मिन्महा मोहमये कटाहे,
सूर्याग्निना रात्रि दिवेन्धनेन।
मासर्तुदर्वी परिघट्टनेन,
भूतानि कालः पचतीति वार्ता॥

यह महामोहमय ब्रह्माण्ड रूप कढाव है, उस में काल सब प्राणियों को डालकर और सूर्य रूपी अग्नि को उसके नीचे जला कर, रात्रि दिन रूपी ईंधन को उसमें झोंका करता है। और महीने तथा ऋतु रूपी कर्छुली से वह प्राणियों को ऊपर नीचे पलट कर रांधता है। इस को ही वार्त्ता कहते हैं। इससे नवीन वार्त्ता और क्या हो सकती है यह तुम्हारे चौथे प्रश्न का उत्तर है।

युधिष्ठिर के सन्तोष जनक उत्तरों को सुन कर यक्ष बहुत प्रसन्न हुवा और बोला कि "हे धर्मात्मा युधिष्ठिर! तुमने मेरे सब प्रश्नों का समुचित उत्तर देदिया है। अतः तुम अपने चारों भाईयों में से जिस एक को जीवित कराना चाहो उसको जीवित करा सकते हो। युधिष्ठिर ने उत्तर दिया कि "हे यक्ष! तुम मेरे प्रिय भाई नकुल को ही जीवित करदो"। तब यक्ष ने कहा कि तुम को भीमसेन बहुत प्यारा है और अर्जुन तो तुम्हारे सब का ही आश्रय भूत है फिर भी हे युधिष्ठिर! तुम नकुल का जीवित होना क्यों चाहते हो? तब धर्मात्मा युधिष्ठिर कहते हैं कि:-

धर्म एव हतो हन्ति धर्मो रक्षति रक्षितः।
तस्माद्धर्म न त्यजामि मानो धर्मो हतोऽवधीत्

धर्म मारा हुवा मार देता है और रक्षा किया किया हुवा रक्षा करता है। ऐसा न हो की मारा हुवा धर्म हमारा नाश करदे, अतः मैं धर्म को नहीं त्यागता हूं। कुन्ती और माद्री यह दोनों मेरे पिता की पत्नियें हैं, वह दोनों ही पुत्र वाली बनी रहें यही मेरी बुद्धि का निश्चय है। मैं अपनी दोनों माताओं से सम बर्ताव चाहता हूं। अतः हे यक्ष! नकुल ही जीवे। यक्ष ने कहा कि "हे युधिष्ठिर तुम अर्थ और काम से धर्म को विशेष समझते हो। अतः हे भरतवर! तेरे सारे भाई ही जीवें। यक्ष के वचन से सब भाई जीवित हो गये। पश्चात् सबने आनंद पूर्वक जल पान किया। फिर युधिष्ठिर ने यक्ष से पूछा कि "मैं आपको यक्ष नहीं समझता आप सत्य कहें कि कौन देवता हैं"? तब यक्ष ने कहा कि हे तात! मैं तेरा पिता धर्म हूं। यश, सत्य, इंद्रिय निग्रह, सरलता, ह्री, अचञ्चलता, दान, तप और ब्रह्मचर्य मेरा रूप है। अहिंसा, समता, शान्ति, तप, शौच और मत्सर यह मेरी प्राप्ति के द्वार हैं। मैं तुम्हारे धर्म भाव से बहुत ही प्रसन्न हुवा हूं। अतः तुम मेरे से वर याचना करो। युधिष्ठिर ने कहा कि जिस ब्राह्मण के अग्नि मथने का यन्त्र मृग ले आया है उसकी अग्नि लुप्त न हो यह मेरा पहिला वर है। यक्ष ने कहा कि मैं तेरी परीक्षा के लिये मृग रूप धारण करके ब्राह्मण का यंत्र ले आया हूं उसे तू ले और अन्य कोईवर मांग। तब युधिष्ठिर ने अपने दूसरे वर में अज्ञात वास में हमको कोई भी न जान सके यह वर मांगा। यक्ष ने तथास्तु कह कर कहा कि "हे युधिष्ठिर मैं तुम्हें वर

देता हूं नहीं होता हूं। अतः तुम और वर मांगो! तब युधिष्ठिर ने कहा कि "हे पिता! तुम प्रसन्न होकर जो वर दोगे वही मैं ग्रहण करूंगा। मैं लोभ, मोह और क्रोध को सदा जीते रहूं। दान तप और सत्य में मेरा मन सदा लगा रहे"। यक्ष ने कहा कि इन गुणों से तुम स्वभावतः युक्त हो फिर भी जो तुम कहते हो वही होगा! इतना कह कर यक्ष अन्तर्धान हो गये। पश्चात् सब पाण्डव अपने आश्रम में आये और उस तपस्वी ब्राह्मण को उसका अग्नि मथने का यन्त्र देदिया।

"भूमा"

कैवल्य उपनिषद्।

आश्वलायन जी महाराज ब्रह्माके पास जाकर कहने लगे "हे भगवन! सत्पुरुष जिसका सेवन करते हैं ऐसी गुप्त ब्रह्म विद्या का मुझ को उपदेश देने की कृपा करें। जिस ब्रह्म विद्या के द्वारा जन्म जन्मान्तरों में किये हुए अनेकानेक पापों को नष्ट करके पर से पर परब्रह्म पुरुष को प्राप्त होते हैं" तब पितामह ब्रह्माने उसके प्रति कहा कि, "श्रद्धा, भक्ति और ध्यान योग द्वारा इस ब्रह्म विद्या को जान। ब्रह्मभाव की प्राप्ति न तो कर्म से होती है, न प्रज्ञा से और न धन ही से, केवल एक मात्र त्याग से अमृत रूप परब्रह्म की प्राप्ति होती है। आत्मा द्वारा हृदयाकाश में स्थित स्वर्ग प्राप्त होता है। स्वर्ग में मुनि प्रवेश करते हैं। यह मुनि लोग वेदान्त के विज्ञान से निश्चय होते हैं और संन्यास योग द्वारा शुद्धान्तःकरण वाले हो जाते हैं। जिन का अन्तःकरण शुद्ध होगया है ऐसे योगी पुरुष विदेह मुक्त होकर ब्रह्मलोक को प्राप्त होते हैं। मनुष्य को एकान्त में रह कर, पवित्र होकर, आसन लगा कर, ग्रीवा मस्तक और शरीर को सीधा रख कर अभ्यास करना उचित है। पश्चात् संन्यासाश्रम ग्रहण करके इंद्रियों का दमन करना चाहिये और भक्ति पूर्वक श्रीगुरुदेव को प्रणाम करना चाहिये। रजोगुण से रहित होकर, शुद्ध होकर और सुख दुःख को सम समझता हुआ हृदयस्थित कमल रूप आत्मा का चिंतन करना चाहिये। आत्मा अचिन्त्य है, अव्यक्त है, अनन्त रूप वाला है, शिव है, प्रशान्त है, अमृत रूप है, ब्रह्म योनि रूप है, आदि मध्य और अंत रहित है, एक है, सर्वत्र व्यापक है, चिदानन्द रूप है, सर्वरूप से रहित है और अद्भुत है। उमा जिसकी सहाय है, जो त्रिनेत्र वाला है ऐसे नीलकण्ठ और प्रशान्त परमेश्वर का ध्यान करके योगी सबका कारण, सबका द्रष्टा और अज्ञानसे परे ऐसे परब्रह्म को प्राप्त होता है। वह ही ब्रह्मा है, वह ही शिव है, वही इन्द्र है, वही अक्षर है, वही स्वयं प्रकाश है, वही विष्णु है, वही प्राण है, वही कालाग्नि है और वही चंद्रमा है। वही सर्व रूप है, वही भूत, भविष्यत और वर्तमान तथा सनातन रूप है। उसी को जान कर मृत्यु का अतिक्रमण करता है इसके अतिरिक्त मृत्यु का और कोई उपाय नहीं है। जो अपनी आत्मा को सब भूतों में स्थित देखता है और सब भूतों को अपनी आत्मा में स्थित देखता है उसी को परब्रह्म की प्राप्ति होती है दूसरे को किसी भी कारण से नहीं होती। अपनी आत्मा को अरणी रूप करके और प्रणव रूप ओंकार को ऊपर की मथानी करके

मन्थन करने से ज्ञान रूपी अग्नि को उत्पन्न करके विवेकी पुरुष सब पापों का नाश करता है। माया से मोहित हुवा आत्मा शरीर को प्राप्त करके स्त्री, अन्न और पानादि अनेक भोगों को भोग कर जाग्रत में तृप्त होता है। वही जीव स्वप्नावस्था में अपनी माया से कल्पित जीव लोक में तम से घिरा हुवा, सब इंद्रियों का लय होने से सुख को प्राप्त होता है। पुनः पूर्व जन्म में किये हुए कर्म के योग से जाग्रत् भाव को प्राप्त हुवा सुषुप्ति भाव को प्राप्त होता है। इस प्रकार जीव तीनों शरीरों की तीनों अवस्थाओं में क्रीड़ा करने वाला होने से सब विचित्र भावों को उत्पन्न करता है। यह जीवात्मा सबका आधार रूप, आनन्द रूप और अखण्ड ज्ञान रूप है। इस आत्मा में तीनों प्रकार की अवस्थायें लय को प्राप्त होती हैं। इस आत्मासे प्राण, मन, सब इंद्रिय, आकाश, वायु, ज्योति, जल और जगत् को धारण करने वाली पृथिवी उत्पन्न हुई है। जो परब्रह्म सर्वात्मरूप, विश्व का कारण रूप, तथा महत रूप है वह ही परमात्मा सूक्ष्म से भी सूक्ष्म, नित्य, सत्य स्वरूप तथा त्वं रूप है। जो ब्रह्म जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्ति आदि प्रपंच का प्रकाश करता है वह ब्रह्म मैं हूं इस प्रकार के ज्ञान से योगी सब बन्धनों से मुक्त होता है। यह आत्मा तीनों अवस्थाओं में भोक्ता, भोग्य और भोग रूप बनता है उन सबसे विलक्षण सबका साक्षी, चिन्मात्र और सदा शिव रूप मैं हूं। मेरे से ही सब उत्पन्न हुवा है, मुझ में ही यह सब ठहरा हुवा है और मुझ में ही लय को प्राप्त होगा ऐसा अद्वय ब्रह्म रूप मैं स्वयं हूं।

मैं अणु से भी अणु तथा महान् रूप भी मैं हूं, विचित्र ब्रह्म रूप भी मैं हूं। मैं ही पुरातन पुरुष, ईश, हिरण्यमय तथा शिव रूप हूं। हाथ पैर से रहित, अचिन्त्य शक्ति वाला मैं हूं। नेत्र से रहित होकर भी देखता हूं। बिना कर्ण सुनता हूं। बहुत प्रकार के रूप वाला हूं मैं ही ज्ञान स्वरूप हूं और मैं ही चित् रूप और नित्य रूप हूं। अनेक वेद वाक्यों से जानने योग्य मैं ही हूं। वेदान्त का बनाने वाला और जानने वाला मैं ही हूं। मुझ में पुण्य पाप नहीं है, मेरा नाश नहीं है, जन्म नहीं है तथा देह इन्द्रिय और बुद्धि भी नहीं है। मैं भूमि नहीं हूं, जल नहीं हूं, अग्नि नहीं हूं, और आकाश नहीं हूं ऐसा जो जानता है वह कलासे रहित अद्वितीय, हृदयाकाश में स्थित परब्रह्म रूप, सर्वके साक्षी रूप, सत् असत् से रहित शुद्ध परमात्म रूप को प्राप्त होता है, जो शत रुद्रका पाठ करता है वह अग्नि से, वायु से, सुरापान से, ब्रह्महत्या से, सुवर्ण की चोरी से, और कृत्याकृत्य से पवित्र होता है तथा ईश्वर के आश्रय वाला होता है। इसी कारण सर्वदा या एक बार भी आश्रय धर्म वालों को इस रुद्र का जप करना चाहिये। इस प्रकार जप करने से ज्ञान की प्राप्ति और संसार का नाश होता है। ज्ञान के बाद कैवल्य परम पद की प्राप्ति होती है।

न जायते म्रियते वा विपश्चि-
न्नायं कुतश्चिन्न बभूव कश्चित्।
अजोनित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो,
न हंयते हन्यमाने शरीरे॥

श्रीकृष्ण-चरित्र ।

उत्थानिका ।

द्वापर युग के अन्त में जब पृथिवी पर अधर्म के साम्राज्य का प्राबल्य होगया था तब दैत्यों के सदृश स्वभाव वाले अभिमानी राजाओर उनकी अधिक सेनाओं के भार से पृथिवी अत्यन्त दुःखित होकर गाय का रूप धारण कर के ब्रह्मा जी के पास पहुंची। अत्यन्त क्षीण शरीर वाली गौ ने रंभाते हुए अपने दुःखों को ब्रह्मा जी से निवेदन किया। पृथिवी के दुःख को सुन कर ब्रह्माजी नारद जी और शंकर सहित बैकुण्ठ लोक को गये। वहां विष्णु भगवान् से प्रार्थना की "हे भगवन् ! भूमि पर कंस, केशी, चाणूर, खर, प्रलम्ब, मुष्टिक, पूतना कलीय नागादि अनेक दैत्यों ने जन्म लेकर समस्त जगत् को दुःखित कर डाला है। उनके दुःखों से पीड़ित हुई भूमि ने अत्यन्त दीन वाणी से भूमण्डल के भार को अपहरण करने की प्रार्थना की है। अतः हे विभो ! आप "यदा यदा हि धर्मस्य" और "परित्राणाय साधूनां" इन वाक्यों का संस्मरण करके भूभार निवारणार्थ कोई उपाय कीजिये"। भगवान् विष्णुने ब्रह्माजी की बात सुन कर देवताओं को आश्वासन देते हुए कहा "हे देवताओ! मैंने तो तुम्हारे आने से पूर्व ही यह निश्चय कर लिया था। अब तुम सब मिल कर अपने अपने अंशों से पृथिवी पर अवतार धारण करो"। भगवान् विष्णु की आज्ञा से अब देवताओं ने भरत वंशियों के कुल में न्यायानुसार जन्म धारण किया। धर्म के भागने युधिष्ठिर के रूप में, इन्द्र के भागने अर्जुन के रूप में, पवन के भाग ने भीमसेन के रूप में, देव वैद्य अश्विनी कुमारों ने नकुल सहदेव के रूप में, वसुओं के अष्टम भागने भीष्म के रूप में, सोमने अभिमन्यु के रूप में, शुक्र भूरिश्रवा के रूप में, सूर्य कर्ण रूप में, शंकर अश्वत्थामा के रूप में उत्पन्न हुए और देव पत्नियां गोपियों के रूप में उत्पन्न हुईं। जब देवताओं ने इस प्रकार अवतार धारण करलिये तब नारद जी ने विष्णु भगवान् से प्रार्थना कि "हे विभो ! आपके अवतार धारण किये बिना इन सब देवताओं का अवतार धारण करना व्यर्थ है। अतः आपभी अपने अंशों से अवतार धारण करें" नारद जी की बात सुनकर विष्णु भगवान् ने कहा "हे नारद जी ! मैं वसुदेव देवकी के सद्ममें अवतार धारण करूंगा और शेष नागजी मेरे से पूर्व ही देवकी के गर्भ से उत्पन्न होंगे। सब जगत् को मोहित करने वाली मेरी माया मोहिनी रूप से यशोदा [illegible] वहां उत्पन्न होगी। इस प्रकार से विष्णु भग[illegible]न् ने नारद जी को समझा बुझा कर शान्त [illegible]किया। पश्चात् जिनकी माया जानने में नहीं [illegible]ाती ऐसे तेज पुञ्ज भगवान् ने अवतार धारण करके नरकासुर, शम्बरासुर, कंस, शिशुपाल [illegible]ादि भयानक दैत्यों का संहार किया। जो कृष्ण [illegible] संकल्प मात्र से पृथ्वी आकाश और स्वर्ग को वश में कर लेते हैं, जिनकी लीला समझ में [illegible]ा आती, जो अपनी [illegible]तना [illegible] से कालचक्र, जगत् चक्र और युग चक्रों की [illegible]

बलाया करते हैं, जो काल, मृत्यु और सकल स्थावर जंगम के स्वामी हैं, जिनका युद्ध के समय दिया हुआ अर्जुन को उपदेश भारत में ही नहीं सकल संसार में अद्वितीय है, जो सर्व व्यापक होने से विष्णु कहलाते हैं, जो सदा अविनाशी हैं पुण्डरीकाक्ष हैं, जो हृदय में निवास करते हैं और सत्य जिन में निवास करता है ऐसे श्रीकृष्ण जी की जो प्राणी शरण लेते हैं वह इस दुःख रूप संसार निवृत्त होकर परम पद को प्राप्त करते हैं।

श्रीकृष्णजन्म

एक समय मथुरा पुरी में उग्रसेन का पुत्र कंस राज्य करता था। कंसकी अनीति से उग्रसेन अत्यन्त दुःखी रहा करता था। उग्रसेन के भ्राता देवक की देवकी नामक सर्वगुण सम्पन्ना कन्या थी। जब यह कन्या विवाह योग्य हुई तब देवक ने उग्रसेन और कंस की सम्मति से यदुकुल भूषण शूरसेन के सुपुत्र वसुदेव से इसका विवाह सम्बन्ध निश्चय किया। शूरसेन बड़ी धूम धाम से सब देशों के नरेशों को संग लेकर वसुदेव के विवाहार्थ मथुरापुरी में पहुंचे। कंस, देवक और कंसने उनका यथोचित आदर सत्कार करके वसुदेव को कन्यादान दिया। इसके पश्चात उन सब लोगों को विदा किया। देवक ने अपनी पुत्री देवकी को प्रसन्न करने के लिये बहुत से रथ, घोड़े, सुवर्ण आदि दास दासियां दान में दीं। कंस स्वयं जिस रथ में वसुदेव देवकी बैठे थे अपनी भगिनी देवकी को प्रसन्न करने के लिये घोड़ों की बाग पकड़ कर हांकता था। इस प्रकार से बड़ी सजधज के साथ बरात मथुरा से थोड़ी ही दूर निकली थी कि कंस को आकाश वाणी ने इस प्रकार कहा "अरे मूर्ख! जिसको हर्ष सहित तू पहुंचाने जाता है इसी देवकी के आठवें गर्भ से तेरा मारने वाला उत्पन्न होगा"। कुल कलंक कंसने इस प्रकार की आकाश वाणी को सुन कर रथ से उतर कर बड़ हाथ में लेकर देवकी के केश पकड़ कर रथ से नीचे घसीट लिया और कहने लगा कि जिस वृक्ष की जड़ को काट दिया जाता है उसके फिर फल नहीं लग सकते। अतः पहिले मैं इस दुष्टा को ही क्यों न मारदूं जिससे "इसके गर्भ से उत्पन्न हुए पुत्र से मेरी मृत्यु होगी" यह शंका सर्वदा के लिये निवृत्त हो जाय। इस दुष्टा को मार कर फिर मैं निष्कंटक राज्य भोगूंगा।

जब कंस इस प्रकार का घोर कर्म करने पर उतारू होगया तब वसुदेव जी स्तुति और युक्तियों से करुणा भरे मधुर वचनों से कंस को शान्त करते हुए बोले "हे कंस! इस समय एक तो विवाह का उत्साह, दूसरे यह साध्वी जाति अबला स्त्री, तीसरे तुम्हारी प्यारी बहन फिर भी इस दीन अबला को मारना कौनसा धर्म है? क्षत्रिय कभी स्त्रियों पर शस्त्र नहीं उठाते हैं। स्त्रियों का मारना शास्त्र में महापाप लिखा है। यदि तुम मृत्यु के भय से इसे मारते हो तो यह तो तुम्हारा अज्ञान है क्योंकि इस संसार में जो उत्पन्न हुवा है उसको एक न एक दिन अवश्य मृत्यु की गोद में बैठना होगा। जिस दिन यह मनुष्य उत्पन्न होता है उसी दिन मृत्यु भी उसके साथ ही जन्म धारण करती है।

व्रजंस्तिष्ठन्पदैकेन यथैवैकेन गच्छति।
यथा तृणजलौकैवं देही कर्म गतिं गतः॥

जैसे चलने के समय मनुष्य अपना अगला पांव संभाल कर आगे रख लेता है फिर पिछला हटाता है अथवा जोंक जैसे चलते समय पहिले अगले तृण को छोड़ता है। ऐसे ही यह देही जिसमें अनेक प्रकार के संस्कार लगरहे हैं दूसरे शरीर को प्रथम ही गृहण कर लेता है पिछे पिछली देह को छोड़ता है। अतः अपने आत्माका कल्याण चाहने वाले प्राणी को चाहिये कि किसी से भी शत्रु भाव न रक्खे, क्योंकि जो दूसरे से शत्रुता करता है उसको भी अपने शत्रु से भय अवश्य होता है। इसलिये हे राजन! यह तुम्हारी छोटी बहिन है, अभी बालक है, दीन है, पराधीन है यह तुम्हारे मारने योग्य नहीं है। क्योंकि दीन और पराधीन को मारने में बड़ा दोष है। वसुदेव जी के इस प्रकार समझाने परभी क्रूर कंस को तनिक भी लज्जा न आई। जब वसुदेवजी ने देखा कि देवकी की मृत्यु निकट हैं तब अपने मनमें विचार करने लगे कि "जहां तक अपना बल, क्रिया और बुद्धि पहुंचे वहां तक मृत्यु को दूर करने का उपाय सोचना चाहिये। फिर यदि मृत्यु नहीं टले तो मनुष्य का कोई दोष नहीं है। इस समय तो देवकी के गर्भ से उत्पन्न होने वाले पुत्रों को कंस को देने का वचन देकर देवकी के प्राण बचाने चाहियें। न जाने बालक के जन्म से पहिले ही कंस मर जाय, कदाचित् देवकी के पुत्र ही न हो और यदि हो भी तो कंस दया करके उसको मारे ही नहीं" इस प्रकार से निश्चय करके वसुदेवजी ने कंस से कहा "हे कंस। आकाश वाणी ने जो भय तुम्हारे हृदय में उत्पन्न कर दिया है वह तुम्हारा भय इस प्रकार से निवृत्त हो सकता है। देखो तुमको देवकी से तो कुछ भय है ही नहीं! यदि कुछ भय है तो देवकी के पुत्रों से है। इसलिये देवकी के गर्भ से जो पुत्र उत्पन्न होगा वह मैं तुमको देदिया करूंगा"। सच है विधाता की गति किसी के भी जानने में नहीं आती कहा है:।

जाको रक्खे साइयां मारन सक्के कोय।
बाल न बंका कर सकै जो जग बैरी होय॥

जब वन में आग लग जाती है तब जो वृक्ष जलन हार नहीं होतेवह समीप में भी होने से बच जाते हैं और जलनहार दूर होने पर भी जल जाते हैं। गांव में आग लगने पर अग्नि के पास के घर बच जाते हैं और दूर के जल जाते हैं।

किसी नगर में कोई सेठ जी रहते थे। वह एक बार मन्दिर में पूजा पाठ कर रहे थे। अचानक गाम में आग लग गई वायु का प्रकोप सेठ के घर की ओर को था। जब आग सैंकड़ों घरों को जलाती सेठ जी के घर के पास पहुंची तब लोगोंने आकर सेठजी को सूचना दी। सेठजी ने अपने मन में विचार किया कि यदि घर जलनहार होगा तो मेरे पूजा छोड़ कर जाने पर भी अवश्य जलेगा। और यदि जलनहार न होगा तब बच ही जायगा। यह सोच कर सेठजी पूजा पाठ में ही लगे रहे। भगवान की इच्छा। जब अग्नि जब सेठजी के घरके पास पहुंची तब वायु दूसरी ओर की चलने लग गई और सेठजी का घर बच गया। कहने का तात्पर्य यह है कि, जो कुछ भगवान ने रचा है वह अवश्य होकर रहता है।

यद्धरि न तद्धावि भवि चेन्न तदन्यथा।

जोहोनहार होती है वह अनहोनी नहीं हो सकती और जो अनहोनी होती है वह होनहार नहीं होसती। भला जब कंस की मृत्यु देवकी के आठवें

गर्भ से होनी निश्चित होगई तब कंस उस को कैसे मिटा कर देवकी के प्राणों का नाश कर सकता था। वसुदेवजी के वचनों पर विश्वास करके कंस ने अपनी बहन को छोड़ दिया पश्चात् वसुदेव देवकी प्रसन्नत पूर्वक अपने घर पर पहुंचे। समय पाकर देवकी ने गर्भ धारण किया जिससे पुत्र उत्पन्न हुवा। वसुदेव जी मिथ्या बोलने से बहुत ही डरते थे। तब अपने वचनों के अनुसार पुत्रको लेकर कंस के पास पहुंचे। वसुदेवजी की सत्यता देख कर कंस बहुत प्रसन्न हुवा और वसुदेव से कहा "तुम इस लड़के को लौटा कर लेजाओ। मुझे इससे तो कुछ भी भय नहीं है मुझे तो केवल आठवें गर्भ से भय है"। वसुदेव जी पुत्र को लेकर अपने घर लौट आये। परन्तु मनमें फिर भी चिन्तित थे, कारण कि वह जानते थे कि कंस क्षणिक बुद्धि वाला है उसने अबतो यह बालक फेर दिया है परन्तु ऐसे पुरुषों का क्या विश्वास कदाचित् फिर थोड़ी देर में वधाज्ञा देदे। उधर वसुदेव जी तो अपने घर पर इस प्रकार बैठे सोच रहे थे उधर नारदजी कंस के पास पहुंचे और कहने लगे 'अरे मूर्ख कंस तू क्यों अपने पैरों आप कुल्हाड़ी मार रहा है, तू जिस डाल पर बैठा हुवा है क्यों अपना नाश करने को उसीको काट रहा है? अरे यह समस्त गोप ग्वाल और वृष्णि तथा यादव वंश तेरे वाधार्थ ही रचे गये हैं। इस सारे रहस्य को तू सुन। मैं एक वार वीणा बजाता हुवा बैकुण्ठ लोक में पहुंचा वहां ब्रह्मा, विष्णु और महेश तेरे वध की वार्त्ता कर रहे थे। उन्हों ने समस्त देवताओं को अंशावतार धारण करने की आज्ञा देकर स्वयं देवकी के आठवें गर्भ में अवतार होने का निश्चय किया है"। तब कंस ने नारद जी से कहा "हे नारद जी मुझे तो केवल आठवें गर्भ से ही भय करना चाहिये' नारद जी ने कंस को समझाने के अर्थ भूमि पर गोला कार आठ रेखा निकाल दीं और कंससे कहा कि तुमही बताओ इनमें आठवीं कौन सी है? जिस रेखा से कंस गिने उस से पूर्व की आठवीं रेखा होवे। इस प्रकार कंस को सब रेखायें आठवीं जचीं।

नारदजी इस प्रकार कंस को समझा कर वीणा बजाते हरि गुण गाते अन्तर्धान होगये। कंस ने वसुदेव देवकी को बुला कर बन्दी गृह में डाल दिया और उनके जो जो पुत्र हुए सब को विष्णु भगवान् की शंकामान कर वध करता रहा। संसार में अपने प्राणों की रक्षा के हेतु अभिमानी, घातकी और लोभी राजा माता, पिता, भाई और बन्धुओं को भी मार डालते हैं। कंस ने अपने पिता उग्रसेन को भी कारागार में डाल दिया और स्वयं राज्य करने लगा। अपने राज्य काल में कंस बाणासुर, भौमासुर, जरासंध, चाणूर और मुष्टिक अदि दैत्यों की सहायता से सब यादवों को अत्यन्त दुःख देने लगा। यादव लोग कंस के भय से दुःखित होकर पाञ्चाल, केकय आदि देशोंमें वास करने लगे। एक एक वर्ष के अवसर पर देवकी ने छः पुत्र उत्पन्न किये और कंस ने सब को मार डाला। सातवें गर्भ में स्वयं शेषनाग जी देवकी के गर्भ में स्थित हुए। इस गर्भ की रक्षा के हेतु भगवान् ने योगमाया को प्रकट किया और उसको आज्ञा दी कि "ब्रज भूमि में नन्दराय जी के गृह में कंस के भय से वसुदेव जी की स्त्री रोहिणी रहती है अतः देवकी के उदर में जो शेष जी का अंशावतार है उसको निकाल कर रोहिणी के उदर में रखदे। परन्तु सावधान! इस बात को तेरे सिवाय

और कोई न जाने। योगमाया सातवें गर्भ को देवकी के उदर से निकाल कर रोहिणी के उदर में रख आई। वसुदेव देवकी का गर्भ पात हुवा जान अत्यन्त खिन्न हुए। तब योगमाया ने वसुदेव देवकी को स्वप्न दिया कि मैं ने तुम्हारे पुत्रको उदर से निकाल कर रोहिणी के उदर में रख दिया है तुम किसी प्रकार की भी चिन्ता न करना। स्वप्न में यह बात सुन कर वसुदेव देवकी अचानक चौंक कर सोते से जाग उठे परचात् देवकी ने अपने पति से कहा कि भगवान ने यह बहुत अच्छा किया नहीं तो पापी कंस इस बालक को भी मार देता। परन्तु गर्भ पात की सूचना कंस को देदेनी चाहिये नहीं तो वह अधर्मी "बालक को कहीं छुपा दिया है" यह समझ कर और कुछ उपद्रव न मंचादे। वसुदेव जी ने बंदीगृह के रखवालों को बुला कर सब वृत्तान्त सुना दिया उन्होंने जाकर कंस को गर्भपात की सूचना दे दी। कंस ने पहरेदारों से कहा जो कुछ हुवा सो हुवा अब आठवें गर्भ की रक्षा भली प्रकार करनी चाहिये।

रोहिणी के उदर में योगमाया का रक्खा हुवा गर्भ शनैः बढने लगा। सब पुरवासियों ने समझा कि रोहिणी को पहिले का ही आधान है। गर्भ ने पूर्ण होकर श्रावण सुदी चौदस बुधवार को बलदेव जी के रूप में गोकुल में जन्म लिया। अब देवकी ने उस आठवें गर्भ को धारण करलिया जिसके कारण कंस ने देवकी के सात पुत्रों को नष्ट कर दिया था। भगवान ने योगमाया को आज्ञादी कि वह ठीक उसी समय पर जब कि मैं देवकी के गर्भ से अवतार लूं यशोदा के गर्भ से कन्या रूप में उत्पन्न होवे। तदनन्तर गर्भ का समय पूर्ण होने पर देवकी और यशोदा ने एक ही साथ पुत्र और कन्या उत्पन्न की। उस समय आकाश निर्मल होगया, सुखदायक शीतल मन्द सुगन्ध सनी पवन चलने लगी, किन्नर गन्धर्व भगवान् का गुणानुवाद करने लगे, मुनि और देवता ब्रज पर पुष्पों की वर्षा करने लगे। इस प्रकार भादों वदी अष्टमी बुधवार रोहिणी नक्षत्र में देवकी की कोख में सर्वान्तर्यामी भक्त भावन भगवान् साक्षात् अपने रूप से प्रकट हुए। उस समय देवता आकाश में भगवान् की स्तुति इस प्रकार करने लगे।

सत्य व्रतं सत्यपरं त्रिसत्यं
सत्यस्य योनिं निहितं च सत्ये।
सत्यस्य सत्यमृतसत्यनेत्रं
सत्यात्मकं त्वां शरणं प्रपन्नाः॥

हे भगवन्! आप सत्यसंकल्प और सत्य परायण हो। भूत, भविष्य और वर्तमान तीनों काल में पृथ्वी, जल, पवन, तेज, आकाश इन पञ्च भूतों के कारण रूप हो। सम दृष्टि और मनोहर वाणी प्रवर्तक और ज्ञानियों के प्रेरणा करने वाले सत्य रूप आप ही हो। हे नाथ! हम आपकी शरण हैं।

विभार्षि रूपाण्यवबोधआत्मा,
क्षेमाय लोकस्य चराचरस्य।
सत्वोपपन्नानि सुखापहानि,
सतामभद्राणि मुहुः खलानाम्॥

हे विभो! आप ब्रह्मा बन कर जगत् को उत्पन्न करते हो, विष्णु बन कर रक्षा करते हो। और शिव बन कर संहार करते हो। सत्व गुण से संयुक्त सत्पुरुषों को सुख देते हो और अधर्मियों को दण्ड देने वाले हो। हे स्वयं- प्रकाश जो ज्ञानवान् पुरुष हैं वे इस महा भयंकर दुस्तर संसार समुद्र से

पार उतारने के लिये भजन भावना रूपी नौका का अवलम्ब लेते हैं।

मत्स्याश्वकच्छपनृसिंहवराहहंस,
राजन्य विप्र विबुधेषु कृतावतारः।
त्वं पासिनस्त्रिभुवनं च यथाऽधुनेश,
भारं भुवो हर यदूत्तम वन्दनं ते॥

हे भक्त वत्सल ! मत्स्य, हयग्रीव, कच्छप, नृसिंह, वराह, हंस, रामचन्द्र, परशुराम और वामनादि रूप धर कर आपने जिस प्रकार त्रिलोकी की और हमारी पहिले रक्षा की थी, उसी प्रकार अब इस पृथिवी का भार उतारो। हे वैकुण्ठ विहारी ! हमारा आपको बारम्बार नमस्कार है। पुनः वसुदेव देवकी भगवान् को चतुर्भुज रूप धारण किये हुए, शंख, चक्र, गदा आयुध उठाये और पीताम्बर धारण किये देख कर प्रार्थना करने लगे। हे भगवन् आपको हमने भली भान्ति जाना है।

त्वत्तोऽस्य जन्मस्थितिसंयमान्विभो
वदन्त्यनीहादगुणादविक्रियात्।
त्वयीश्वरे ब्रह्मणि नो विरुध्यते,
त्वदाश्रयत्वादुपचर्यते गुणैः॥

हे विभो ! निरीह, निर्गुण, निर्विकार आपही हो। आपसे ही इस विश्व की उत्पत्ति पालन और संहार होता है। आपही ईश्वर और ज्ञान स्वरूप हो, इसलिये आप में कुछ विरोध नहीं। आपका आश्रय लेकर तीनों गुण ही विश्व को रचते हैं। अनादि, व्यापक, ज्योति स्वरूप, निर्गुण, निर्विकार, निर्विशेष और चेष्टा रहित आपका स्वरूप किसीके जानने में नहीं आता। वेद आपके स्वरूप का वर्णन करते हैं।

योऽयं कालस्तस्य तेऽव्यक्तबन्धो
चेष्टामाहुश्चेष्टते येन विश्वम्।
निमेषादिर्वत्सरान्तो महीयान्।
तं त्वेशानं क्षेमधाम प्रपद्ये॥

हे माया प्रेरक ! काल को आप की माया वर्णन करती है। इसी काल से विश्व होता है। आप निर्भय रूप हो। हम आप की शरण हैं। हे मधुसूदन ! आपका जन्म जो हमारे यहां हुवा है इसको यह पापी कंस न जानने पावे। अतः आप शंख, चक्र, गदा पद्म से शोभित अपने रूप ने छिपालो। यदि कोई मनुष्य उस दुष्ट से कह देगा कि आप ने अवतार धारण किया है तो वह अभी शस्त्र लेकर चला आवेगा। तब भगवान् ने अपना चतुर्भुज रूप छिपा कर साधारण बालक का रूप बना लिया और वसुदेव से कहा कि यदि तुम को यह भय है कि हमारे इस पुत्र को कंस मारडालेगा तो तुम मुझको गोकुल में नन्दराय जी के घर पर पहुंचादो और यशोदा के गर्भ से प्रकट हुई कन्या रूपा योगमाया को अपने घरले आओ। उस समय भगवान् ने अपनी माया से सब द्वारपालों का ज्ञान हरलिया, उसी समय सब निद्रा के वशीभूत होगये। पावों की बेड़ियां आपही आप खुल गईं और द्वारों के ताले खुल गये। वसुदेव जी बालक को लेकर नन्दराय जी के घरकी ओर चले। उस समय आधीरात का समय था। रात्रि सांय सांय कर रही थी। अंधेरी झुक रही थी। मेघ गर्ज कर रात्रि को और भी भयानक बना रहे थे। मार्ग दिखाने के हेतु चपला कभी कभी चमक कर पथ प्रदर्शक का कार्य करती थी। इसके आश्रय से वसुदेव

धीरे धीरे चलते थे। शेष जी महाराज फण रूप छत्र छाया से वर्षा के जल से भगवान् की रक्षा करते थे। यमुना अतिवेग से बह रही थी। कोसों जल ही जल दिखाई देता था। जलके परपराहट का शब्द दूर दूर तक सुनाई देता था। परन्तु जिस प्रकार समुद्र ने रामचन्द्र जी को मार्ग दिया था उसी प्रकार यमुना जी ने वसुदेव जी को मार्ग दिया। वसुदेव जी जैसे तैसे करके नन्दजी के घर पर पहुंचे। वहां जाकर देखा कि सब द्वार खुले हुए हैं। यशोदा बेसुध पड़ी सोरही है। उसे तो कन्या के उत्पन्न होने का ज्ञान भी नहीं है। वसुदेव जी ने कृष्ण को यशोदा की शय्या पर सुला कर और कन्या को गोद में लेकर अपनी राह ली। बन्दीगृह में पहुंच कर कन्या देवकी की शय्या पर सुलादी। फिर उसी प्रकार बेड़ियां पहन लीं। सब द्वार बन्द होगये। अब कन्या ने रोना आरम्भ किया। बालक का रोना सुन कर सब द्वारपाल सावधान होगये। उन्होंने तुरन्त जाकर कंस को सूचना दी। कंस कांपता हुवा खड्ग हाथ में लेकर दौड़ा। कंस को आया हुवा देख कर देवकी ने बहुत प्रार्थना की कि यह तो कन्या है इस को प्राण दान दे दो। परन्तु पापी कंस कब मानने वाला था उसने तुरन्त देवकी के हाथ से नवजात बालिका को झटक लिया। वह कन्या के पैर पकड़ कर घुमाने लगा और ज्योंही वह शिला पर पटककर मारने को हुवा कन्या उसके हाथसे छुट गई और उसने उछलकर कंसके माथे पर लात मारी और आकाश में उड़गई। फिर ऊपर जाकर कहने लगी "अरे अधम तू मुझे व्यर्थ ही मारने का परिश्रम करताथा परन्तु तेरा मारने वाला तो किसी दूसरे स्थान में जन्म ले चुका है। अरे मूर्ख बालकों को मारकर तैंने व्यर्थ ही पाप का भार अपने शिर पर रक्खा। अतः सावधान रहना वह तुझे शीघ्र ही मारेगा"।

यह बात सुन कर कंस बहुत ही विस्मित हुवा। उसने वसुदेव देवकी को कारागार से मुक्त कर दिया और दोनों को सम्बोधन करके इस प्रकार बोला "मैं बड़ा अपराधी हूं। मैं ने तुम्हारे छः बालकों को मार कर बड़ा निर्दयता का काम किया। मैं महापापी, नीच बुद्धि वाला न जाने कौन से नरक में गिरूंगा। तुम अपने पुत्रों के मरने का शोक मत करो क्योंकि:-

काल एव नृणां शत्रुः कालश्च परिणामकः।
कालो नयति सर्वं वै हेतु भूतस्तु मद्विधः॥

काल ही मनुष्यों का शत्रु है, कालही परिणाम देने वाला है। कालही सब को लेजाता है मेरे जैसे तो व्यर्थही कारण बनजाते हैं। हे सत्य वक्ताओ! मेरा अपराध क्षमा करो क्योंकि साधु पुरुष दीनों पर दया ही किया करते हैं"। ऐसा कह कर यह सजल नेत्रों सहित वसुदेव देवकी के चरणों में गिर गया। देवकी अपने भाई कंस को व्याकुल देख कर कहने लगी "हे भाई! मैं ने तुम्हारा सब अपराध क्षमा कर दिया" पश्चात् कंस वसुदेव देवकी की आज्ञा लेकर अपने घर को चला गया।

अपूर्ण

"भूमा"

मानव धर्मसार।

अष्टमोऽध्यायः

व्यवहारान् दिदृक्षुस्तु ब्राह्मणैः सह पार्थिवः।
मन्त्रज्ञैर्मन्त्रिभि श्चैव विनीतः प्रविशेत्सभाम्॥१॥

व्यवहारों (मुकदमों) को देखना चाहता हुआ राजा विनीत होकर ब्राह्मणों और मंत्र के जानने वाले मंत्रियों के साथ सभा में प्रवेश करे॥१॥

यदा स्वयं न कुर्यात्तु नृपतिः कार्य दर्शनम्।
तदा नियुञ्ज्याद्विद्वांसं ब्राह्मणं कार्य दर्शने॥२॥

जब (काम की अधिकता वा रोग से) राजा स्वयं कार्यों का देखना न कर सके, तब विद्वान् ब्राह्मण को कार्यों के देखने में लगाए॥२॥

सभां वा न प्रवेष्टव्यं वक्तव्यं वा समंजसम्।
अब्रुवन्विब्रुवन्वापि नरो भवति किल्बिषी॥३॥

या तो सभा में प्रवेश नहीं करना चाहिये, या ठीक २ कहना चाहिये, मनुष्य न कहता हुआ वा उलटा कहता हुआ दोनों तरह से पापी होता है॥३॥

यत्र धर्मो ह्यधर्मेण सत्यं यत्रानृतेन च।
हन्यते प्रेक्षमाणानां हतास्तत्र सभासदः॥४॥

क्योंकि जहां धर्म अधर्म से और सत्य झूठ से मारा जाता है और (सभासद) देखते रहते हैं, वहां सभासद मरे हुए हैं॥४॥

धर्म एव हतो हन्ति धर्मो रक्षति रक्षितः।
तस्माद्धर्मो न हन्तव्यो मानो धर्मो हतोऽवधीत्॥५॥

धर्म मारा हुआ मार देता है, धर्म रक्षा किया हुआ रक्षा करता है, इसलिए धर्म को नहीं मारना चाहिए, न हो, कि मारा हुआ धर्म हमें मारदे॥५॥

वृषोहि भगवान्धर्मस्तस्य यः कुरुते ह्यलम्।
वृषलं तं विदुर्देवास्तस्माद्धर्मं न लोपयेत्॥६॥

भगवान धर्म वृष है। उसका जो लोप करता है, उसको वृषल (शूद्र) कहते हैं, इसलिये धर्म का लोप न करे॥६॥

एक एव सुहृद्धर्मो निधनेऽप्यनुयाति यः।
शरीरेण समं नाशं सर्वमन्यद्धि गच्छति॥७॥

धर्म ही एक मित्र है, जो मरने पर भी साथ जाता है और सब कुछ शरीर के साथ नाश को प्राप्त होता है॥७॥

पादो ऽधर्मस्य कर्तारं पादः साक्षिणमृच्छति।
पादः सभासदः सर्वान् पादो राजानमृच्छति॥

(अन्याय करने में फल भागी बतलाते हैं) पाद (चौथाई) अधर्म करने वाले को, चौथाई साक्षियों को, चौथाई सब सभासदों को और चौथाई राजा को प्राप्त होता है॥८॥

राजा भवत्यनेनास्तु मुच्यन्ते च सभासदः।
एनो गच्छति कर्तारं निन्दार्हो यत्र निन्द्यते॥९

पर जहां (ठीक न्याय होने से) निन्दा के योग्य (अर्थी वा प्रत्यर्थी) निन्दा जाता है, वहां राजा निष्पाप होता है, सभासद सब छूट जाते हैं, पाप अपने करने वाले को प्राप्त होता है॥९॥

यस्य शूद्रस्तु कुरुते राज्ञो धर्मविवेचनम्।
तस्य सीदति तद्राष्ट्रं पंके गौरिव पश्यतः॥१०॥

जिस राजा के शूद्र धर्म निर्णय करता है, उसका वह राष्ट्र उस के देखते हुए कीचड़ में गौ की तरह फंसता है॥१०॥

आकारैरिङ्गितैर्गत्या चेष्टया भाषितेन च ।
नेत्रवक्त्रविकारैश्च गृह्यतेऽन्तर्गतं मनः ॥ ११॥

क्योंकि आकृति, इशारे, गति (पाओं आदि का फिसलना आदि) चेष्टा, भाषण और नेत्र तथा मुख के विकारों से अन्तर्गत मन जाना जाता है ।११

ब्राह्मणस्तु निधिं लब्ध्वा क्षिप्रं राज्ञे निवेदयेत् ।
तेन दत्तं तु भुंजीत स्तेनः स्यादनिवेदयेत् ।१२

ब्राह्मण को जो धन प्राप्त हो शीघ्र जाकर राजा से निवेदन करदे राजा से दिये हुए धन को अपने काम में लावे । राजा को बिना निवेदन किये काम में लाने से चोर कहलाता है ॥ १२ ॥

स्वानि कर्माणि कुर्वाणा दूरे सन्तोपि मानवाः
प्रिया भवन्ति लोकस्य स्वे स्वे कर्मण्यवस्थिताः

अपने (जाति देश, कुल) के कर्मों को करते हुए मनुष्य चाहे दूर (देशान्तर) में भी हो तो भी (अपने देश जाति, और कुलके) लोगों को प्यारे होते हैं, जो अपने २ कर्मों में स्थिर हैं ॥ १३ ॥

स्त्रीणां साक्ष्यं स्त्रियः कुर्युर्द्विजानां सदृशा द्विजः ।
शूद्राश्च सन्तः शूद्राणामन्त्यानामन्त्ययोनयः ॥

स्त्रियों की साक्षी स्त्रियें हों, द्विजों के अपने जैसे द्विज, शूद्रों के श्रेष्ठ शूद्र हों और अन्त्यजों के श्रेष्ठ अन्त्यज हों ॥ १४ ॥

नास्ति सत्यात्परो धर्मो नानृतात्पातकं परम् ।
साक्षि धर्मे विशेषेण तस्मात्सत्यं विशिष्यते ॥

सत्य से परे कोई धर्म नहीं और झूठ से अधिक कोई पाप नहीं । यह बात साक्षि के धर्मों में विशेष कर है अतः सत्य ही सब से बड़ा है ॥ १५ ॥

एकमेवाद्वितीयं तु प्रब्रुवन्नावबुध्यते ।
सत्यं स्वर्गस्य सोपानं पारावारस्य नौरिव ॥

एकही अद्वितीय ब्रह्म है जोकि साक्षी को कहते हुए भी नहीं जाना जाता । नदी से पार करने वाली नवका की भांतिसत्य स्वर्ग की सोपन है ।

सत्येन पूयते साक्षी धर्मः सत्येन वर्धते ।
तस्मात्सत्यं हि वक्तव्यं सर्ववर्णेषु साक्षिभिः १७

साक्षी सत्य से पवित्र होता है, धर्म सत्य से बढ़ता है, इसलिये हरएक वर्ण के विषय में साक्षियों को सत्य हीबोलना चाहिये ॥ १७॥

आत्मैव ह्यात्मनः साक्षी गतिरात्मा तथात्मनः ।
मावमंस्थाः स्वमात्मानं नृणां साक्षिणमुत्तमम् ॥

आत्मा ही आत्मा का साक्षी है, तथा आत्मा ही आत्मा की शरण (रक्षक) है, सो तू मनुष्यों के उत्तम साक्षी अपने आत्मा का (झूठ बोल कर) अपमान न कर ॥ १८ ॥

मन्यन्ते वै पापकृतो न कश्चित्पश्यतीति नः ।
तांस्तु देवाः प्रपश्यन्ति स्वस्यैवान्तरपूरुषः ।१९

पाप करने वाले समझते हैं, कि हमें कोई नहीं देखता, पर उनको देवता देखते हैं, और अपने अन्दर का पुरुष देखता है ॥ १९ ॥

ब्रह्मघ्नो ये स्मृता लोका ये च स्त्रीबालघातिनः
मित्रद्रुहः कृतघ्नस्य ते ते स्युर्ब्रुवतो मृषा ।२०

(अर्थात) ब्रह्महत्या करने वाले के वा स्त्री वा बालक के घाती के, तथा मित्र द्रोही वा कृतघ्न के जो २ लोक कहे हैं, वह २ झूठ बोलने के हों ।२०

जन्म प्रभृति यत्किंचित् पुण्यं भद्र त्वया कृतम् ।
तत्ते सर्व शुनो गच्छेद्यदि ब्रूयास्त्वमन्यथा ।२१

जन्म से लेकर हे भद्र! जो २ तूने पुण्य किया है, वह तेरा सारा कुत्तों को प्राप्त हो (व्यर्थ जाए) यदि तू अन्यथा कहे ॥ २१ ॥

एकोऽहमस्मीत्यात्मानं यत्त्वं कल्याण मन्यसे ।
नित्यं स्थितस्ते हृद्येषः पुण्यपापेक्षिता मुनिः ॥

मैं अकेला हूं हे भले! तू जो ऐसा अपने आपको समझता है (ऐसा मत समझ क्योंकि) पाप पुण्यों का देखने वाला यह मुनि (चुपचाप परमात्मा) सदा तेरे हृदय में स्थित है ॥ २२ ॥

यमो वैवस्वतो देवो यस्तवैष हृदि स्थितः ।
तेन चेदविवादस्ते मा गंगां मा कुरून् गमः ।२३

वैवस्वत यम देवता जो यह तेरे हृदय में स्थित है, उसके साथ यदि तेरा (झूठ बोलने से) विवाद नहीं है, तो मत गंगा को जा मत कुरुक्षेत्र को जा ।२३

पञ्च पश्वनृते हन्ति दश हन्ति गवानृते ।
शतमश्वानृते हन्ति सहस्रं पुरुषानृते ॥ २४ ॥

पशु के विषय में झूठ बोलने से पांच मित्र के वध का, गौ विषय में दश का, अश्व विषय में सौ और पुरुष विषय में सहस्र मित्रों के वध का पाप लगता है ॥ २४ ॥

न वृथा शपथं कुर्यात्स्वल्पेऽप्यर्थे नरो बुधः ।
वृथा हि शपथं कुर्वं प्रेत्य चेह च नश्यति ।२५।

बुद्धिमान् पुरुष बहुत छोटे भी काम में झूठी शपथ न करे, क्योंकि झूठी शपथ करने वाला लोक परलोक में (निन्दा और नरक की प्राप्ति से नाश को प्राप्त होता है ॥ २५ ॥

कामिनीषु विवाहेषु गवां भक्ष्ये तथेन्धने ।
ब्राह्मणाभ्युपपत्तौ च शपथे नास्ति पातकम् २६

स्त्रियों के विषय में, विवाहों में, गौ के चारे में, इंधन में, और ब्राह्मण की रक्षा में शपथ में पातक नहीं है ॥ २६ ॥

उपच्छन्नानि चान्यानि सीमालिङ्गानि कारयेत् ।
सीमाज्ञाने नृणां वीक्ष्य नित्यं लोके विपर्ययम् ।

सीमा के जानने में सदा लोक में लोगों की भूल होती देखकर और भी हद के गुप्त चिन्ह बनाए

येन केन चिदङ्गेन हिंस्याच्चेच्छ्रेष्ठमन्त्यजः ।
छेत्तव्यं तत्तदेवास्य तन्मनोरनुशासनम् ।२८॥

अन्त्यज जिस किसी अंगसे द्विजाति पर प्रहार करे, वही २ उसका काटना चाहिये यह मनु की आज्ञा है ॥ २८ ॥

निग्रहेण हि पापानां साधूनां संग्रहेण च ।
द्विजातय इवेज्याभिः पूयन्ते सततं नृपाः ॥२९

पापियों के निग्रह और भलों के संग्रह से राजे सदा पवित्र होते हैं, जैसे यज्ञों से ब्राह्मण ॥ २९ ॥

पुरुषाणां कुलीनानां नारीणां च विशेषतः ।
मुख्यानां चैव रत्नानां हरणे वधमर्हति ।३०॥

कुलीन पुरुषों विशेषतः स्त्रियों और मुख्य रत्नों (हीरे आदि) के चुराने में वध के योग्य होता है ॥ ३० ॥

येन येन यथाङ्गेन स्तेनो नृषु विचेष्टते ।
तत्तदेव हरेदस्य प्रत्यादेशाय पार्थिवः ॥ ३१॥

जिस २ अङ्ग से चोर किसी प्रकार भी मनुष्यों में विरुद्ध चेष्टा करता है, उसके उसी अंग

को (जैसे पार के) छुड़ाने के लिये राजा कटवादे ॥ ३१

साहसे वर्तमानं तु यो मर्षयति पार्थिवः ।
स विनाशं व्रजत्याशु विद्वेषं चाधिगच्छति ॥ ३२

साहस में प्रवृत्त पुरुष को जो राजा सहारता है वह जल्दी नाश को प्राप्त होता है और [दंगा आदि भगावें] द्वेष को प्राप्त होता है ॥ ३२ ॥

गुरुं वा बालवृद्धौ वा ब्राह्मणं वा बहुश्रुतम् ।
आततायिनमायान्तं हन्यादेवाविचारयन् ॥ ३३

[अपने बचाव के लिये तो कहीं भी दोष नहीं होता] गुरु, बाल, वृद्ध वा बहुश्रुत ब्राह्मण कोई भी हो सब आततायी [मारोंकाशत्रु] बनकर आवे, तो उसे बिना विचारे मार डाले ॥ ३३ ॥

अग्निदो गरदश्चैव शस्त्रपाणि धनापहः ।
क्षेत्रदारहरश्चैव षडेते ह्याततायिनः ॥ ३४ ॥

अग्नि लगाने वाला, विष देने वाला, शस्त्र लेकर मारने वाला, धन का हरण करने वाला, भूमि चुराने वाला और स्त्री का हरण करने वाला यह छह आततायी कहलाते हैं ॥ ३४ ॥

नाततायिवधे दोषो हन्तुर्भवति कश्चन ।
प्रकाशं वाऽप्रकाशं वा मन्युस्तं मन्यु मृच्छति ॥

चाहे लोगों के सामने हो या एकान्त में, पर आततायि के मारने वाले को कोई दोष नहीं होता वहां क्रोध क्रोध का मुकाबिला करता है ॥ ३५ ॥

भर्तारं लंघयेद्या तु स्त्री ज्ञातिगुणदर्पिता ।
तांश्वभिः खादयेद्राजा संस्थाने बहु संस्थिते ॥

जो स्त्री अपने पिता भाई आदि के धन बल आदि को वा अपने गुण [सौन्दर्यादि] के दर्प से पति को त्यागे [पति की परवाह न करके पर पुरुष से फंसे] उसको बहुत जनों से भरे स्थान में राजा कुत्तों से नोचवावे ॥ ३६ ॥

पुमांसं दाहयेत्पापं शयने तप्त आयसे ।
अभ्यादध्युश्च काष्ठानि तत्र दह्येत पापकृत् ।

और उस पापी पुरुष को राजा तपे हुए लोहे के पलंग पर [बान्धकर] जलवावे इस पर लकड़ियाँ डाले, वहां वह पापकारी दग्ध हो ॥ ३७ ॥

यस्य स्तेनः पुरे नास्ति नान्यस्त्रीगो न दुष्टवाक् ।
न साहसिकदण्डघ्नौ स राजा शक्रलोकभाक् ॥

जिस पुर में चोर नहीं, न परस्त्रीगामी, न दुष्ट वाणी वाला, न साहसी, न कठोर दण्ड (मारपीट) वाला, वह राजा इंद्रलोक (स्वर्ग) का भागी है ॥ ३८

आश्रमेषु द्विजातीनां कार्ये विवदतां मिथः ।
न विब्रूयान् नृपो धर्मं चिकीर्षन् हित मात्मनः

आश्रमों के कर्तव्यों के विषय में विवाद करते द्विजों को राजा अपना भला चाहता हुआ धर्म में अपने आप कुछ न कहे ॥ ३९ ॥

आगमं निर्गमं स्थानं तथा वृद्धिक्षयावुभौ ।
विचार्य सर्वपण्यानां कारयेत्क्रय विक्रयौ ४०

व्यवहार की सब वस्तुओं की इन बातों को ठीक २ विचार कर राजा क्रय विक्रय कराए, कि कहां से आई है कहां जाएगी कबतक पड़ी रही है

तुलामानं प्रतीमानं सर्वं च स्यात्सुलक्षितम् ।
षट्सु षट्सु च मासेषु पुनरेव परीक्षयेत् ॥ ४१

तोल और माप सब ठीक चिह्नों वाले हों और छः छः महीने पर उनको फिर परखे ॥ ४१ ॥

वाणिज्यं कारयेद्वैश्यं कुसीदं कृषिमेव च ।
पशूनां रक्षणं चैव दास्यं शूद्रं द्विजन्मनाम् ॥

व्यापार, ब्याज, खेती और पशुओं की रक्षा वैश्य से करवाए और शूद्र से द्विजातियों की दासता करवाए ॥ ४२ ॥

शूद्रं तु कारयेद्दास्यं क्रीतमक्रीतमेव वा ।
दास्यायैव हि सृष्टोऽसौ ब्राह्मणस्य स्वयम्भुवा ।

शूद्र चाहे खरीदा हुआ हो, या बिना खरीदा हुआ हो उससे दास कर्म करवावे, क्योंकि ब्रह्माने उस को ब्राह्मण के दास कर्म के लिये ही रचा है ॥ ४३

न स्वामिना निसृष्टोऽपि शूद्रो दास्याद्विमुच्यते ।
निसर्गजं हि तत्तस्य कस्तस्मात्तदपोहति ॥ ४४

अपने स्वामी से आजाद किया भी शूद्र दासत्व से नहीं छूट सका है, क्योंकि वह स्वाभाविक है, कौन इससे इस कर्म को हटा सकता है ॥ ४४ ॥

भार्या पुत्रश्च दासश्च त्रय एवाधनाः स्मृताः ।
यत्ते समधिगच्छन्ति यस्य ते तस्य तद्धनम् ॥

भार्या पुत्र और दास यह तीनों हीन धन वाले कहे हैं वह जो पाते हैं, वह धन उसका होता है जिसके वह दास हैं ॥ ४५ ॥

विस्रब्धं ब्राह्मणः शूद्राद् द्रव्योपादानमाचरेत् ।
न हि तस्यास्ति किंचित्स्वं भर्तृहार्यधनो हि सः ॥

ब्राह्मण (अपने दास शूद्र से निशंक धन लेलेवे, क्योंकि उसका दासका) कुछ अपना नहीं है, स्वामी उसका धन ले सका है ॥ ४६ ॥

राग टोडी १

तू दयालु दीन हौं तू दानि हौं भिखारी ।
हौं प्रसिद्ध पातकी तू पाप पुञ्ज हारी ॥ टेक ॥
नाथ तू अनाथ को अनाथ कौन मोसों ।
मो समान आरत नहीं आरत हर तोसों ॥ १ ॥
ब्रह्म तू हौं जीव हौं तू ठाकुर हौं चेरो ।
तात मात गुरु सखा तू सब विधि हित मेरो ॥ २ ॥
तोहिं मोहिं नातो अनेक मानिये जो भावै ।
ज्यों त्यों तुलसी कृपालु चरण शरण पावै ॥ ३ ॥

राग टोडी २

दीन को दयालु दानी दूसरो न कोई ।
जाहि दीनता कहौं हौं दीन देखौं सोई ॥ टेक ॥
सुनिसुर नर नाग असुर साहिब तौ घनेरे ।
पै तौलौं रावरे न नेक नयन फेरे ॥ १ ॥
त्रिभुवन तिहुं काल विदित बदत वेद चारी ।
आदि अन्त मध्य राम साहिबी तिहारी ॥ २ ॥
तोहिं मांग मांगनों न मांगनों कहायो ।
सुन स्वभाव शील सुयश याचक जन आयो ॥ ३ ॥
पाहन पशु विटप विहंग अपने कर लीने ।
महाराज दशरथ के रंक राव कीने ॥ ४ ॥
तू गरीब को निवाज मैं गरीब तेरो ।
बारक कहिये कृपालु तुलसीदास मेरो ॥ ५ ॥

राग विलावल ३

प्रभु जी तुम मेरे प्राण अधारे ॥ टेक ॥
नमस्कार डंडौत वंदना, अनिक बार जाऊं बलिहारे ॥
ऊठत बैठत सोवत जागत, यह मन तुम्हें चितारे ॥२॥
सुख दुख इस मनकी बिरथा, तुमही आगे सारे ॥३॥

तू मेरी ओट बल बुद्धि धन, तुमहीं तुमहीं मेरे प्रवारे
जो तुम करो सोई भल हमरे, फेब नानक सुख च लारे

राग बिलावल ४

हरि के नाम बिना दुःख पावै ॥ टेक ॥
भगति बिना संशय नहीं छूटै, गुरु यह भेद बतावै ॥१
कहा भयो तीरथ व्रत कीये, राम शरण नहिं आवै ॥२
योग यज्ञ निष्फल तिहिं मानो, जो प्रभु यश बिसरावै।
मान मोह दोनों को परिहरि, गोविन्द के गुण गावै ॥
कहे नानक यहि विधि को प्राणी जीवन मुक्त कहावै॥

राग गौरी ॥ ५ ॥

साधो रचना राम बनाई ॥ टेक ॥
इक बिनशै इक अस्थिर मानै,
अचरज लख्यो न जाई ॥ १ ॥
काम क्रोध मोह वश प्राणी,
हरि मूरति बिसराई ॥ २ ॥
झूटा तन सांचा कर मान्यो,
ज्यों सुपना रैनाई ॥ ३ ॥
जो दीसै सो सकल बिनासै,
ज्यों बादर की छाई ॥ ४ ॥
जन नानक जग जानो मिथ्या,
रहो राम शरनाई ॥ ५ ॥

राग आसा ६

प्रभु को सुमरि सुमरि मन मेरे।
पाप कटे सब तेरे ॥ टेक ॥
नाम दान असनान निरर्थक,
जब प्रीत नहीं मन तेरे ॥ १ ॥
जात पात की बात न पूछें।
पूर्वे काज भलेरे ॥ २ ॥
जिन करतार अकाल पछाना,
सोई जान उजेरे ॥ ३ ॥
दो दिन के सुख कारण मूरख,
पाकत उमर सबेरे ॥ ४ ॥
गंग यमुन काशी बन जंगल,
हरि घट मांह हरि ..रे ॥ ५ ॥
पर जो उसको ढूंढन जावत,
ऊजड़ फिरत अन्धेरे ॥ ६ ॥
सांच त्याग मिथ्या जिन पकड़ी,
अति तन दुःख सहेरे ॥ ७॥
खालस जिन भगवान पछाना,
हम तिनके हैं चेरे ॥ ८ ॥

राग नट ॥ ७ ॥

कान्हर काहे नन्द दुलारो मो नयनन को तारो री ॥
प्राण पियारो जग उजियारो,
मोहन मीत हमारोरी ॥ १ ॥
दृग में राजत हिये में छाजत,
एक छिन नाहिं न्यारो री ॥ २ ॥
मुरली टेर सुनावत निशिदिन,
रूप अनूपम वारो री ॥ ३ ॥
चरण कमल मकरन्द लुब्ध है,
मन मधुकर गुञ्जारो री ॥ ४ ॥
रस रंग केलि छबीले प्रभु संग,
छिन नाँ सदा निहारो री ॥ ५ ॥

राग भैरवी ॥ ८ ॥

छवि आछी बनी बनवारी की ॥ टेक ॥
मोर मुकुट मकराकृत कुण्डल,

अब हाँ घूंघरवारी की ॥ १ ॥
मृदु मुसकान आन नयनन की,
को बरणे गिरधारी की ॥ २ ॥
छन्ना दास युगल जोरि पर,
तन मन धन सब वारी की ॥ ३ ॥

राग देश ॥ ९ ॥

युगल छवि आज अनूप बनी ॥ टेक ॥
गोरे श्याम सांवरी राधा,
नख शिख द्युति कमनी ॥ १ ॥
खञ्जन नयन मैन मद गंजन,
अंजन रेख घनी ॥ २ ॥
ललित किशोरी लाल रसिक वर,
मृदु मुसकान घनी ॥ ३ ॥

राग प्रभाति ॥ १० ॥

सांचे मन के मीता रघुवर सांचे मन के मीता ॥ टेक ॥
कब शबरी काशी को धाई,
कब पढ़ आई गीता।
झूंठे फल ताके प्रभु खाये,
नेक लाज नहिं कीता ॥
लंकापति को गर्व हरयो है,
राज्य विभीषण दीता।
सुग्रीवहिं सखा कियो रघुनन्दन,
वानर किये पुनीता ॥
सकल यज्ञ मुनि जनके कीने,
सब भूपन जल जीता ॥
भस्म रमाई कहां अहल्या,
गणिका योग न लीता ॥
तुलसीदास प्रभु शुद्ध चित लखि,
सब हि मोक्ष पद दीता ॥

राग पहाड़ ॥ ११ ॥

सब मत को मत यह उपदेशू ॥
मूल मन्त्र यह उचित सिखावन भज मन गुरु अवधेशू॥
अहिपुर नरपुर देवलोकपुर,
रंक फकीर नरेशू।
जो जापक नित राम नाम को,
सो भव सिन्धु तरेशू ॥ १ ॥
जप तप संयम दान नेम मख,
तीरथ अमित करेशू।
तुल हिं न सोवा राम नाम सम,
वेद पुराण कहेशू ॥ २ ॥
गावत शम्भु आदि नारद मुनि,
व्यास विरंचि गणेशू।
यह सब गावत नाम महातम,
काग भुशुण्डि खगेशू ॥ ३ ॥
नाम प्रतीत राख हिरदे में,
प्रमाणों कहो महेशू।
तुलसिदास यह नाम की महिमा,
कलिमल सकल हरेशू ॥ ५ ॥

१२

नींद तोहिं बेचूंगी आली जो कोई गाहक होय ॥ टेक
आये मोहन फिर गये अंगना,
मैं बैरिन रही सोय ॥
कहा कहूं कछु बस ना मेरो,
आयो धन दियो खोय ॥
सखीराम प्रभु अबके मिलें तो,
राखोंगी नयनन समोय ॥

निम्न लिखित महानुभावों ने भक्ति के संरक्षक बन कर भक्ति को अपनाने की कृपा की है।

१. राय साहब श्री बल्दान प्रसाद जी रईस आनरेरी मजिस्ट्रेट गुलजारबाग, पटना १०१)
२. राय बहादुर ला० बनारसीदास जी रईस, मिल ओनर अम्बाला १०१)
३. श्रीमान् भाई नारायण सिंह जी हीरापट्टी लाहौर १०१)
४. राव बहादुर, कप्तान राव बलवीर सिंह जी ओ. बी. ई. रामपुरा ५१)
५. श्रीमान् भाय भाई गनेशीलाल जी आरमी मिनिस्टर अलवर राज्य ५१)
६. राव श्रीराम रईस नांगल २५)
७. म० शोभाराम जी डूंगरवास २५)
८. चौ० धर्मसिंह जी मलिक, तहसीलदार रेवाड़ी २५)
९. राव निहालसिंह जी सूबेदार पाल्हावास २५)
१०. बा० लक्ष्मणदास जी बी० ए० इन्स्पेक्टर आफ स्कूल्स पटना यू० पी०। २५)
११. श्रीमती रानी निहालकौर धर्मपत्नी कप्तान राव बहादुर बलवीरसिंह जी ओ० बी० ई० जागीरदार रामपुरा रेवाड़ी। २५)
१२. सेठ बनवारी लाल जी कोडिया, चावड़ी बाज़ार दिल्ली। २५)
१३. चौ० नेतराम साहब गिरदावर हलका गाडूसाना जिला गुड़गाँवा। २५)

सहायक।

१. पं० मूलचन्द जी प्रेसीडेंट म्युनिस्पल कमेटी पलवल। ११)
२. श्रीमती अमरावकौर धर्मपत्नी राव जगमालसिंह जी रईस नाँगल ११)
३. महाशय शादीराम जी मल्लापुर, रेवाड़ी। ५)
४. बा० व्रजलाल जी शिरस्तेदार प्राईवेट सेक्रेटरी आफिस संगरूर, जींद। ५)
५. राव बख्तावरसिंह जी मु० जैतपुर तहसील रेवाड़ी। ५)
६. श्रीमती सूरज देवी धर्म पत्नी चौ० ज़ोरावरसिंह जी शिशन जज अलीगढ़। ५)
७. चौ० शिवनारायणसिंह जी कोतवाल, सीकर राजपूताना ५)
८. श्रीमान् पं० जयराम जी शर्मा 'गौड़' क्लार्क इलाहाबाद बैंक देहली। ५)
९. ला० बनारसी दास जी, अकाउण्टेण्ट हजूरी, संगरूर। ५)
१०. ला० भगवान दास जी, अ० हिड क्लर्क सैक्रेटरी इजलास खास आफिस संगरूर ५)
११. महन्त प्रकाशानन्द जी मन्दिर बारादरी सयान दरीबा मारान दिल्ली ५)

बिना गुरु के सिद्धान्त कौमुदी।

भाषाफक्किका प्रकाश ॥

इस पुस्तक में बहुत ही सरल भाषा में तथा प्रश्नोत्तर के रूप में सिद्धान्त कौमुदी की गूढ़ फक्किकाओं को समझाया गया है। विद्यार्थियों के बड़े लाभ की पुस्तक है इस से विद्यार्थी लघु पढ़ कर स्वयं सिद्धान्त कौमुदी पढ़ सकते हैं। मूल्य केवल ॥)

ज्ञानधर्मोपदेश।

इस छोटी सी पुस्तक में वेद शास्त्र तथा धर्म का सार संगृहीत है और वेदान्त की उत्तम कविताओं का संग्रह है। मूल्य =)॥

वेदोपनिषत्।

इस पुस्तक में ईश, कठ, केन, मुण्डक, और माण्डूक्यादि उपनिषदों तथा वेदों के उत्तम २ मन्त्रों का अर्थ सहित संग्रह है। मूल्य ।=)

अष्टोत्तरशतमन्त्रमाला।

इस पुस्तक में गीता और उपनिषदों से १०८ बहुत ही उत्तम श्लोकों का संग्रह है। यह नित्य पाठ करने की पुस्तक है। मूल्य =)।

भगवद्गीता संस्कृत तथा भाषा टीका सहिता।

इस पुस्तक में प्रथम मूल है तत्पश्चात् अन्वय तथा सरल संस्कृत में प्रत्येक मूल के पर्याय हैं फिर सरल हिन्दी भाषानुवाद है। यह गीता के जिज्ञासु तथा कथक्कड़ों के बहुत ही लाभ की पुस्तक है पृष्ठ संख्या ४२६ होने पर भी हमने भक्त जनों के हितार्थ मूल्य केवल ॥=) ही रक्खा है शीघ्रता कीजिये केवल १००० ही प्रतियाँ हैं जिन के अति शीघ्र ही निकल जाने की आशा है।

सत्य शब्द संग्रह।

इस पुस्तक में महात्माओं की उत्तम २ वाणियों का संग्रह है। वेदान्त विषय की उत्तम कोटि की कवितायें कवित्त तथा सवैये हैं। अन्त में विचार सागर है। यह भक्त जनों के नित्य पाठ की बड़ी ही उत्तम पुस्तक है मूल्य ।=)

मुद्रक तथा प्रकाशक भूमानन्द ब्रह्मचारी "भक्ति मेरु" आश्रम रामपुरा रेवाड़ी।